प्रकाश्य

इस पीढ़ी के कथाकारों में श्री आनन्दप्रकाश जैन का प्रमुख स्थान है। इनकी कहानियों के अनेक संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इनकी चुस्त लेखनी से हिन्दी-जगत परिचित है। हास्यरस की कहानियों का यह संकलन 'मुर्गे' नाम से आपके समक्ष है। प्रेस की असावधानी के कारण 'विश्वासघाती' इस संग्रह में प्रकाशित है जो हमारे दूसरे संग्रह 'कानून से युद्ध' के लिए सुरक्षित था। साथ ही कागज में भी भिन्नता आ गई है इसके लिए पाठक मुझे क्षमा करें। आगामी संस्करणों में इस दोष का परिहार हो जायेगा।

सम्पूर्णानन्द एम० ए०

(हास्यरस प्रधान कहानियों का अनूठा संकलन)

लेखक—

आनन्दप्रकाश जैन

प्रकाशक—

कार्यालय—औसानगंज, वाराणसी—१

प्रकाशक—
सम्पूर्णानन्द एम० ए०
आनन्द पुस्तक भवन
पहड़िया, वाराणसी–२

प्रथम संस्करण
१९५९
मूल्य दो रुपया

मुद्रक—
बैजनाथ प्रसाद
कल्पना प्रेस,
रामकटोरा रोड, वाराणसी

कुकड़ू-कूँ

आजकल मुर्गे बड़े ऐतिहासिक दौर से गुज़र रहे हैं। दुनिया में अण्डों की खपत तेजी के साथ बढ़ रही है।

यह स्थिति मुर्गों को लड़ाने वाले नवाब जादियों के लिए चिन्ता-जनक हो उठी है। ज्यों-ज्यों विज्ञान तेजी के साथ तरक्की करता जा रहा है, त्यों-त्यों न केवल मुर्गे होशियार हो रहे हैं, बल्कि उनमें मुर्गियों को तलाक देने की प्रथा भी चल पड़ी है। वह दिन भी दूर नहीं, जब मुर्गों की जाति में से विवाह-संस्था का लोप हो जाएगा और मुर्गियाँ सार्वजनिक क्षेत्र में बड़ी संख्या में उतर आयेंगी। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि साम्यवाद की भावना मुर्गियों के हृदय में तेजी के साथ घर करती जा रही है और सामाजिक दृष्टि से इसका असर उनके स्वास्थ्य पर भी पड़ रहा है।

मगर मुर्गों को घबराने की जरूरत बिलकुल नहीं है। जो समझदार मुर्गियाँ हैं वे नए आन्दोलनों की तरफ बिलकुल ध्यान नहीं दे रही हैं। कारण कि साम्यवाद फक्कड़ों का धर्म है और जो मुर्गियाँ साम्यवाद की तरफ ज्यादा ध्यान देंगी, उनके यौगिंग करने के अवसर उतने ही कम होते चले जाएँगे। स्वतन्त्रता की चाशनी के भीतर जिम्मेदारी की जो कुनैन निहित होती है वह उनका सारा नशा सिहरन कर देगी।

जिन मुर्गों का विचार यह है कि अण्डे सेने का काम उनके जिम्मे आ पड़ेगा वे एक बहुत बड़ी भूल कर रहे हैं। उन्हें यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पुरुष की होड़ में दौड़ने वाली आधुनिक मुर्गी यदि अपनी कोख हल्की नहीं रखेगी, तो युग की माँग पूरी नहीं कर सकेगी, इसलिए उसे अण्डों की तादाद लामुहाला कम करनी पड़ेगी। मुर्गियों के इन बदलते हुए तौर-तरीकों को कानी आँख से देखने की जरूरत नहीं है। क्रान्ति और परिवर्तन का स्वागत करने के लिए उन्हें दिल खोलकर हँसना चाहिए और मुर्गियों के तेवर देखकर हौले-हौले मुसकराना चाहिए। इसीलिए 'चार आँखें'' के बाद अपनी हास्य-कथाओं का यह दूसरा संग्रह मैं फेफड़े रखनेवाले मुर्गों को भेंट करता हूँ।

७८ रायजादगान, मेरठ,
दिनांक १ जनवरी, १९५९ ई०

आनन्दप्रकाश जैन

अनुक्रमणिका

मुर्गे

"थोड़ा-सा घी तो और लो।"

"नहीं, रानी, नहीं। वैसे भी वैद्य जी ने उड़द की दाल खाने को मना कर रखा है।"

"अजी, लो भी। बिना खाए-पिए बदन कैसे चलेगा?"

"चलने की खूब कही! अभी फुटबाल की तरह फूला हुआ है, फिर तो गुब्बारे की तरह फूल जायगा!"

"देखो जी, जब मैं तुम्हारी दाल में घी डाला करूँ, तो तुम हील-हुज्जतें न किया करो,"—लाला धरनीदास की घरनी ने कहा—'नीचे वाले पंडित को नहीं देखते? पंडिताइन तौल कर पूरा एक सेर घी रोज पिलाती हैं उसे। तभी तो मरा साँड हुआ जा रहा है!"

जब ललाइन ने उड़द की दाल से भरे हुए कटोरे में दो चम्मच घी और डाल दिया, तो लाला धरनीदास बोले—"तो क्या तुम मुझे कम समझती हो? हाथी से भिड़ जाऊँ तो चारो खाने चित आए! इन नसों में खून नहीं दौड़ रहा है, घी दौड़ रहा है! समझीं?"

ललाइन यह सुन कर, विशेष प्रसन्न हुईं। एक करछा साग और परोसते हुए बोली—"पंडिताइन को बड़ा गुमान है अपने घरवाले पर। और वह भी घमण्ड में फूला रहता है। देखो, नीचे चौक के बीच दो ईंटें ला कर रख दी हैं नासमारे ने!"

"एँ, दो ईंटें रख दी हैं! सो किस लिए?"—लाला धरनीदास हाथ रोक कर बोले—"किसी का सिर फोड़ेगा क्या?"

"सिर फोड़ेगा मरा अपना या पंडिताइन का! उन ईंटों पर हाथ टेक कर रोज गिन-गिन कर दंड पेलता है।"

"हराम का पैसा खाता है! पेलने दो साले को दंड! किसी दिन हम जैसों से भिड़ पड़ा, तो चारों खाने चित आएगा!"

"बस, डींग मारना तो कोई तुमसे सीखे! यह तो होता नहीं कि कुछ करतब दिखाओ। नीचे वाला मुआ सारे दिन ऊपर को थुथनी उठाए मुझे घूरता रहता है। उसके मुँह में जलती लकड़ी ठूँस के दिखाओ अपनी मर्दानगी, तो एक बात भी है!"

"क्या कहा? सारे दिन घूरता रहता है? यह तुम क्या कहती हो? यह तो सरासर दूसरे की घरवाली पर डाका है! उफ! उफ! ठहर जाओ, रोटी खा लूँ, तो फिर उसे बताऊँ! चुन्नू, मुन्नू कहाँ हैं?"

"चुन्नू,—मुन्नू तो स्कूल गए हैं," लाला धरनीदास की घरवाली ने कहा।

"खैर, कोई बात नहीं। मैं अकेले ही निबट लूँगा। तुम जरा एक जलती लकड़ी निकाल कर देना तो चूल्हे में से।"

"पहले रोटी तो खा लो।"

"नहीं, बस। रोटी लौट कर खाऊँगा। अब तो जब तक मेरे हृदय की 'अग्नि' नहीं बुझेगी, तब तक...अजी, तुम निकालो तो लकड़ी!"

और लाला धरनीदास रोटी छोड़ कर धोती सँभालने लगे। पहले पेट पर धोती का फेंटा मजबूती के साथ कसा, फिर उसकी चुन्नट सीधी की, और फिर इस तरह जोश खाकर उठने से जो साँस चढ़ गई थी, उसे ठीक किया। तब तक ललाइन ने चूल्हे से जलती लकड़ी निकाल कर उनके हाथ में थमा दी।

चौक के ऊपर दूसरी मंजिल पर चारों ओर छज्जा था। उस पर आ कर उन्होंने देखा कि चौक के एक किनारे पटरे पर बैठे पंडित भायानन्द चौका जीम रहे थे। चूल्हा ठंढा-सा पड़ा था, और उसमें से धुआँ निकल रहा था। पंडिताइन चूल्हे में फूँक मार रही थीं। दो-तीन बच्चे इधर-उधर हापा-धापी खेल रहे थे। पंडित जी की थाली खाली थी, और वे एकटक चूल्हे में पड़ी रोटी की ओर देख रहे थे।

लाला धरनीदास ने पहले अपनी एक हथेली पर फूँक मारी। फिर उससे लकड़ी थाम कर, दूसरे हाथ की हथेली पर यही प्रयोग किया।

इसके बाद अपने चौड़े घेरे को सँभालते हुए, मलमल का कुरता हिलाते हुए, वे जीने से नीचे उतरने लगे। आधे जीने तक उतर कर, उन्होंने जीने के ऊपर वाली पैड़ी पर खड़ी ललाइन की ओर घूम कर देखा। ललाइन ने हाथ से इशारा करके कहा—"हाँ-हाँ, उतरो बेखटके। रोटी खाने को मुँह बाए बैठा है। जाते ही मुँह में लकड़ी ठूँस देना। इसके बाद पंडिताइन से मैं निबट लूँगी।"

लाला धरनीदास ने फिर हथेलियों पर वहीं प्रयोग किया, और फकाफक जलती लकड़ी लिये वह नीचे उतरने लगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि पंडित मायानन्द अपने पतले शरीर से दंड पेलने का प्रयत्न करते थे। उनका साल में तीन सौ छप्पन दिन न्योता रहता था। बाकी जो नौ दिन बचते थे, आज उन्हीं में से कोई मनहूस दिन था। बड़ी कठिनाई से रोटी उनकी थाली में आ पाई थी और वह चौथाई रोटी का कल्याण करने को उसका ग्रास बना कर मुँह तक ही ले जा पाए थे कि भारी और कड़कदार आवाज सुनाई पड़ी—"पंडित जी!"

रोज-रोज आवश्यकता से अधिक खाने के कारण पंडित जी का शरीर बेंत की तरह काँपता था। आवाज की लरज से ग्रास उँगलियों के बीच में से छूट कर थाली में जा गिरा। झटके से उन्होंने गर्दन घुमा कर देखा तो बाछें खिल गईं। लपक कर उठे और उससे भी तेजी से लाला धरनीदास के पास फुदक कर पहुँचे। जब तक लाला कुछ कहें तब तक उन्होंने लाला के हाथ से लकड़ी छीन ली, और पंडिताइन से बोले—"देखा, पंडिताइन? ऐसे होते हैं आदर्श पड़ोसी! देखा कि पड़ोसी के चूल्हे में आग नहीं जल पा रही है। सो खुद ही आ गए आग ले कर। अब लो, जल्दी से बनाओ रोटी। पेट कमर से लग गया है। आओ जी, आओ, लाला! पंडिताइन के हाथ के फुलके खाओ, तो, भगवान कसम, जनम सफल हो जाए!"

इस प्रकार हाथ से एकाएक हथियार छिन जाने पर लाला भौंचक्के-से खड़े रह गए। वह आँखें फाड़ कर उस लकड़ी को देखने लगे जो अब

पंडित जी के चूल्हे में पहुँच कर अपना करतब दिखा रही थी। पंडित जी ने जब खाने का न्योता दिया तो जागते हुए-से बोले—"ऐं ! हाँ, हाँ, खाओ पंडित जी, खाओ मेरी थाली भी लगी पड़ी है। चलता हूँ। फिर आप से बातें करूँगा।"

पंडित जी ने इसकी कोई परवाह नहीं की। वह मनोयोग से रोटी सिंकती देखने लगे। लाला जितनी तेजी से आए थे, उससे भी ज्यादा तेजी से ऊपर चढ़ गये।

ललाइन छज्जे पर खड़ी सारा कांड देख रही थी। लाला को इस प्रकार बैरंग वापस आते देख कर उसने दाँत पीसे और रसोई में उनके साथ-ही-साथ घुसीं। फिर बोलीं—"वाह, वाह ! बड़ी बहादुरी दिखा कर लौटे ! इसी दम पर मर्द बनने चले थे ?"

"मैं क्या करता ?"—लाला हाँफते हुए बोले—"जब उसने लकड़ी ही हाथ से छीन ली, तो—।"

"अजी बस, रहने दो ! लकड़ी छीन ली तो जबान कहीं चली गई थी ? दस-बीस गालियाँ भी नहीं सुनाई गईं उस मुँहजले को !"

लाला आधे पेट ही उठ गए थे। नजर थाली पर गड़ी थी और पाँव उनके शरीर को उसी तरफ खिसका रहे थे। धम्म-से पटरे पर बैठ कर बोले—"गालियाँ ? हाँ, गालियाँ तो सुनानी चाहिए थीं ! बैठो, बैठो, मेरे सामने बैठो। मैं जरा गालियाँ याद कर लूँ।"

ललाइन ने आव देखा न ताव, उनके सामने बैठ कर जोर से अपने माथे पर दुहत्थड़ मारा और लगी रोने। रोते-रोते ही उसने गाना शुरू कर दिया—"क्या पता था कि ऐसे डरपोक आदमी से पाला पड़ेगा ! लोग हैं कि आँखों-ही-आँखों में खाए जाते हैं और इनसे उँगली तक नहीं हिलाई जाती !"

लाला ने उसे मनाना शुरू किया, मगर रोटी खाने का क्रम नहीं तोड़ा।

उधर पीठ फेर कर लाला ज्यों ही जीने पर पहुँचे कि पंडिताइन ने

घूँघट उलट दिया, और दाएँ हाथ की पाँचों उँगलियाँ तेजी से पंडित जी की नाक से छुलाते हुए बोली—"तुम तो बस पूरे अकल के दुश्मन हो! सारी अकल श्लोकों ने चट कर ली! सत्यनारायण की कथा बाँचने के सिवा तुम्हें कुछ आता भी है?"

फुलकों के स्थान पर ये फूले-फूले वचन सुन कर पंडितजी हक्के-बक्के से पंडिताइन का मुँह देखने लगे। फिर बोले—"पति को कुवचन बोलने वाली स्त्री रौरव नरक की निवासिनी होती है! यह एकदम अंड-बंड बकने लगी! इतनी देर में क्या हो गया?"

पंडिताइन बोली—"हो क्या गया! तुम्हारा सिर, मेरा मूँड़! यह ललाइन पैसे के घमंड में चूर हुई जा रही है। कल मुझे दिखा कर अपनी नयी साड़ी ऊपर छज्जे पर फैला रखी थी!"

"अरी पंडिताइन, अपने छज्जों पर तो सभी अपनी साड़ियाँ सूखने को फैलाती हैं। इसमें नयी बात कौन-सी हो गई?"

"नयी बात कैसे नहीं हो गई? साड़ी गीली थोड़े ही थी। अच्छा, यह लाला मुझे रोज घूर-घूर कर क्यों देखता है? जी में तो आता है, कि मरे के दीदे नोच लूँ!"

"क्या कहा? धरनीदास रोज तुम्हें घूर-घूर कर देखता है! यह तो एक प्रकार से पर-स्त्री-गमन हुआ! शास्त्रों में लिखा है कि—"

"खाक लिखा है शास्त्रों में!"—पंडिताइन ने अपना मत प्रकट किया—"अपनी अकल भी तो चलानी चाहिए। मैके में मेरे चाचा भी तुम्हारी तरह पंडिताई करते हैं, पर जब तक चार गाली नहीं सुना लेते, तब तक बातें नहीं करते किसी से। कभी-कभी तो श्लोक पढ़ते-पढ़ते बीच में गाली बोल जाते हैं!"

"तो तुम क्या चाहती हो कि मैं लाला धरनीदास को श्लोकों में गालियाँ सुनाऊँ?"

"सुनाओ या न सुनाओ, मुझे क्या? मैं तो यह जानती हूँ कि तुम निरे पोंगा हो और लाला से डरते हो!"

'डरता हूँ ? असंभव ! डर शब्द तो मुझे न संस्कृत में याद है, न हिन्दी में। अच्छी बात है; ब्राह्मण का बेटा हूँ। अब जब तक लाला को गिन कर सौ गालियाँ नहीं सुना लूँगा, तब तक भोजन न करूँगा !"

इतना कह कर पंडित जी पटरे पर एकदम 'अबाउट टर्न' हो गए। फिर ऊपर को मुँह कर के, होठों के आगे दोनों हथेलियों की ओट कर के, उन्होंने लाला के प्रति पहली गाली का उच्चारण किया– "ओ अवैधपुत्र (हरामजादे) ! तनिक बाहर तो निकल !"

ऊपर लाला बची-खुची रोटी निबटा कर कुल्ला करने के लिए उसी समय छज्जे पर आए।

अपनी पुकार का उत्तर इतनी जल्दी पा कर पंडित जी ने कहा— "अरे शूकरसुत (सुअर के बच्चे) ! अगर मैं आर्यानन्द पंडित हूँ, तो अवश्य तेरी सब चालें समझ गया हूँ ! तू यह प्रज्वलित काष्ठ मेरा दाह करने के लिए ही लाया था, और मैं, सौभाग्य से ही तेरे इस प्रहार से त्राण पा गया ! तेरा इतना साहस कि तू मेरी सहधर्मिणी की ओर अनुचित दृष्टिपात करे ! यदि तुझे अपने बल का दंभ हो तो नीचे उतर आ !"

लाला धरनीदास ने इधर-उधर देखा कि पंडित जी किसे संबोधित कर के शास्त्र-पाठ कर रहे हैं। फिर बोले—"हैं, हैं, हैं, अभी-अभी भोजन प्राप्त किया है। पर आप जो ये श्लोक-से पढ़ रहे हैं, सो अपनी बुद्धि में नहीं आए, महाराज। दूकान पर आ कर सुनाओ तो दक्षिणा मिलेगी, यहाँ नहीं।"

"एं ! दक्षिणा ?" पंडितजी ने कुछ देर तक गुद्दी खुजा कर सोचा। फिर बोले--"अच्छा, अच्छा, जिजमान। चिन्ता न करो। दूकान पर ही आऊँगा।" पंडिताइन से कहा—"पंडिताइन, तू निश्चिन्त रह। लाला ने दूकान पर आने को कहा है। दक्षिणा पा कर शेष अट्ठानवे अपशब्द भी उसके कानों में डाल दूँगा !"

'डिताइन चली-भुनी बैठी थी। लाला कुल्ला कर के भीतर चले गए

थे। पंडित के वचन सुन कर पंडिताइन ने बेलन को जोर से पटका चकले पर, लकड़ियाँ निकाल कर डाल दीं पानी की बालटी में, और सनसी से तवा पकड़ कर चूल्हे पर औंधा कर दिया। फिर दहाड़ कर बोली "तुमने मेरा खून सुखाने में कोई कसर थोड़े ही छोड़ रखी है। विवाह-संस्कारों पर वैद्यक के श्लोक पढ़ा करते हो, और गालियाँ सुनाते हो संस्कृत में! हे भगवान्, मुझे किस मूढ़ के पल्ले बाँध दिया!"

"मूढ़ के पल्ले बाँध दिया! अरी, वाह री पंडिताइन! तुझे लज्जा नहीं आती कि पति को भूखा छोड़ कर तवे को औंधा कर दिया! अभी तो पेट आधा भी नहीं भरा था।"

पंडिताइन ने कहा—"अब रोटी खाओगे? तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। अभी-अभी प्रण किया था कि जब तक लाला को सौ गालियाँ नहीं सुना लोगे, भोजन नहीं करोगे—"

"पंडिताइन!"—पंडितजी ने बड़े करुणा-भरे स्वर में कहा—"मैं तो मूढ़ था ही, पर तू तो मुझसे भी बढ़कर मूढ़ निकली। यदि मुझे यह पता होता कि तूने रामायण तक का पाठ नहीं किया है, तो भगवान् की सौगंध खा कर कहता हूँ, मेरा-तेरा यह कुमेल कदापि न होता!"

"क्या?"—पंडिताइन ने चिंघाड़ कर कहा—"मैंने रामायण भी नहीं पढ़ी है! अगर तुम्हारी जगह मेरी सास होती, तो उसका सिर इसी बेलन से फोड़ देती! बताओ तो, मुझे रामायण की कौन-सी चौपाई नहीं आती?"

पंडितजी ने तुरन्त चौपाई पढ़ी—"होइहै सोइ जो राम रचि राखा, को करि तरक बढ़ावहिं साखा!" अर्थात् भगवान् कौशलपुर-नरेश की यदि यही इच्छा है कि भायानन्द पंडित भोजन प्राप्त करें, तो कुतर्क कर के उनके भोजन में सत्तर अड़ंगी लगाने से कोई लाभ नहीं है!"

पंडिताइन धीमे स्वर में बोली—"यह चौपाई मुझे भी आती है! तुम अपना चौका-चूल्हा सँभालो! मैं चली भइया के यहाँ!"

पंडितजी का यह कमजोर प्वाइंट था। अन्त में तय हुआ कि लाला

की दूकान पर जा कर, उन्हें शेष अट्ठानबे गालियाँ दे कर जब पंडित भार्यानन्द लौटेंगे, तो उन्हें रोटी तैयार मिलेगी।

अँगोछा कंधे पर डाल, माथे पर चौड़ा चन्दन का तिलक लगा, पंडित भार्यानन्द घर से बाहर निकले। घर से बाहर निकलते ही उन्हें पनवाड़ी की दूकान पर लाला धरनीदास पान खाते हुए मिले। पास जा कर पंडित भार्यानन्द ने इस तरह खँखारा जैसे उन्होंने लाला को देखा ही न हो। लाला धरनीदास ने उन्हें देखा तो वे बोले—"अरे, पंडितजी, रुकिए। मुझे आप से कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।"

पंडित जी ने मुँह नहीं फेरा। निष्काम ब्रह्मचारियों की भाँति नाक की सीध में रुक गए। लाला ने पास जा कर कहा—"यह तो तुम जानते ही हो, पंडितजी, कि हम दोनों पड़ोसी हैं?"

"जान गया, जिजमान!" पंडितजी ने कहा।

"ठीक है,"—लाला धरनीदास ने संतुष्ट होकर कहा—"तो फिर यह भी तुम जानते ही होगे कि पड़ोसी की घरवाली अपनी माँ के बराबर होती है?"

"यही तो! यही तो मैं भी कहता हूँ कि मेरी सहधर्मिणी आपकी माता के समान है! फिर भी आप उसकी ओर घूरते हैं!"

पंडितजी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाए थे कि लाला ने एकदम उछल कर कहा—"क्या कहा? मैं तुम्हारी उस मुर्गे-सी नाकवाली, शरीफे-सी खाल वाली धर्मपत्नी की तरफ देखता हूँ! पंडित भार्यानन्द, तुम लाख पड़ोसी हो, पर इस बात को लेकर हमारा-तुम्हारा महाभारत आज संध्या के समय नीचे वाले चौक में छिड़ेगा! अपने जो-जो हिमायती हों, उन्हें बुला लेना! हँ, हँ, हँ! यह भी एक ही रही! इनकी मैना को देखते हैं! अरे, हम तो कहते-कहते रह गये कि हमारी धर्मपत्नी की ओर देख-देख कर तुमने उसका आधा दम निकाल डाला है! उलटे—"

पंडितजी को तुरन्त स्मरण हो आया कि उन्हें शेष अट्ठानबे अपशब्द भी लाला धरनीदास के सम्मान में सुनाने हैं। उन्होंने बीच में ही कहा—

"यही होगा, यही होगा ! या तो कौरव-पांडवों का महाभारत हुआ था जिजमान, या हमारा-आपका होगा ! अरे, नराधम, नरशृगाल, नारकी, नटखट, निशाचर, नास्तिक, नरकगामी, नरभक्षी—"

"महाराज !" लाला घरनीदास जोर से चिल्ला कर बोले—"बस, बस, एक-एक गाली के बदले एक-एक लकड़ी तुम्हारे सिर पर न लगाई, तो मेरा नाम लाला घरनीदास नहीं ! तुम मुझे निरा भोंदू समझते हो ! दो गालियाँ घर पर सुनाई थीं, और आठ ये हो गई । दस लकड़ियों में तुम्हें नरक पठा दूँगा ! जाओ, भाग जाओ !"

पंडितजी ने आँखें तरेरीं, मुट्ठियाँ भींचीं, और इधर-उधर से लोगों को इकट्ठा होते देख कर एक ओर का ब्रह्मनाद करते हुए पलायन किया ।

उसी समय से शहर भर में इस महाभारत का ढोल पिटना आरंभ हो गया । पंडितजी ने तुरन्त अपने सहयोगियों को सूचना दी । उनमें पंडित कोमलानन्द, पंडित रामहिलावन, पंडित रामहँसावन, पंडित कृष्णगोप आदि प्रमुख थे, जिन्होंने अपनी-अपनी सहधर्मिणियों के साथ उस महान् महाभारत का दर्शक बनना स्वीकार किया ।

लाला घरनीदास ने अपनी व्यापारी बिरादरी के अगुआओं को बुलावा भेज दिया । उनमें जिन महानुभावों ने आना स्वीकार किया, उनके नाम ये हैं —लाला मिक्खनलाल, लाला चोखेमल, लाला बिरथीमल, लाला कलट्टरलाल आदि, आदि ।

सन्ध्या से पहले ही अतिथियों ने लाला और पंडितजी के घर को अपने-अपने शुभागमन से पवित्र करना आरंभ कर दिया ।

मुहल्ले के लोगों ने समझा कि आज लाला घरनीदास ने फिर से मुन्नू का नामकरण किया है । बहुत से शुभचिंतक बिना बुलाए ही चले आए । भंगी अपना टोकरा ले कर आ धमका । मगर यहाँ आने पर हालत दूसरी ही दिखाई दी । बीच चौक अखाड़ा बनाया गया था । अखाड़ा कच्चा नहीं, बढ़िया फैशनेबिल था । सारे चौक में टाट बिछा कर उसके ऊपर दरी और दरी के ऊपर रुई के मोटे-मोटे गद्दे बिछा दिए गए थे ।

एक तरफ चौक से लगी तिदरी में पंडित भार्यानंद दो ईंट रखे, लोगों को दिखा-दिखा कर दंड पेल रहे थे। हर बार जब उनका वक्षःस्थल और पेट जमीन के पास जाते थे तो जमीन उन्हें ऊपर उठने के लिए सहारा देती थी।

लोगों के कानों में बहुत जल्दी यह बात पड़ गई कि आज लाला धरनीदास और पंडित भार्यानन्द का मल्ल-युद्ध होगा। उनमें जोश था और वे अपने सगे-संबंधियों को भी यह बे-पैसे का तमाशा देखने के लिए बुला लाए थे। चौक के किनारों पर तिल रखने को भी जगह नहीं रह गई थी।

उधर लाला को लड़ने के लिए तैयार किया जा रहा था। उन्होंने एक जाँघिया धारण कर लिया था, और कई नौकर उनके कंधों पर तौलिए डाल कर दाब-भींच कर रहे थे। अनेक लोगों ने यह सलाह भी दी थी कि नौकरों से ही पंडित भार्यानंद की खोपड़ी पर चार-पाँच जूते लगवा दिए जाएँ। मगर लाला का कहना था कि उस पति पर लानत है जो अपनी पत्नी को कुदृष्टि से स्वयं न बचा सके। फिर उनके शरीर में से चार पंडित भार्यानंद निकल सकते थे। आखिर वह उड़द की दाल का सेवन करते थे, जिससे अपार शक्ति प्राप्त की जा सकती है।

जब लड़ने के लिए दोनों तैयार हो गए तो लाला धरनीदास को नौकरों ने सावधानी से सँभाल कर जीने से नीचे उतारा।

लाला चोखेमल ने कहा—"वाह, लाला धरनीदास! आपका नाम भी बाजार के फर्स्ट नंबर पहलवानों में लिखा दिया जाएगा अब! यह आपने अच्छा किया कि लुटभैयों की तरह सरे-आम अखाड़े में लड़ने नहीं गए, बल्कि कुश्ती के लिए भी घर पर ही शाही इंतजाम करा लिया।"

लाला ने कहा—"लाला चोखेमल, अपनी इज्जत अपने हाथ है। मुझे तो अब बस इसी बात का डर है, कि मेरे हाथ से कहीं ब्रह्म-हत्या न हो जाए।"

"बेफिकर रहो!"—लाला चोखेमल ने कहा—"पुलिस वाले सब अपने यार हैं!"

लाला जब चौक में आए तो चारों तरफ दाँत निकाल-निकाल कर प्रसन्नता प्रकट की गई, और लोगों ने अपने फेफड़ों से खुल कर काम लिया। एक कोने में पंडित भार्यानंद घुटने, कुहनियाँ और कमर मोड़े इस तरह खड़े थे, कि जैसे अभी शत्रु पर टूट पड़ना चाहते हों। उनके तीनों बच्चे तौलिये से उनके बदन का पसीना पोंछ रहे थे। कोई टाँगों पर काम कर रहा था, कोई हाथों पर, और उनके दोनों हाथों के बीच में घुस कर पेट की सलवटों का पसीना गायब करने में उनका सबसे छोटा बेटा बुरी तरह व्यस्त था। उसी समय पंडिताइन ने पीछे से घूँघट निकाले हुए आ कर कहा—"तुम्हें अपने पुरखों की कसम, जो आज मात खाओ! नब्बे गालियाँ और रह गई हैं। जब तक उन्हें न सुना लोगे, तब तक घर में चूल्हा नहीं चलेगा!"

उधर से आवाज आई—"क्या देर है, पंडित भार्यानंद?"

दूसरे कोने पर लाला भी उसी झपट-मार मुद्रा में खड़े हो गए।

तभी पंडित जी के मुँह से धारावाही रूप से श्लोक निकलने आरंभ हुए, मानों वे उस महान् दंगल का मंगलाचरण पढ़ रहे हों:—

"रे बुभुक्षित, परान्नसेवी, अभक्ष्य-भक्षक, लोलुपः।
स्वादकिंकर, महान पेटू, सर्वभक्षी, गजोदरः॥
मक्षिभूषक, खलभूषक, घृतादिशोषक, कुभक्षकः।
गिद्धद्रष्टा, मलःस्रष्टा, अन्नकामी, राक्षसः॥"

इसी प्रकार जब पण्डित जी ने छाँट-छाँट कर पाँच-सात श्लोक पढ़ डाले, तो दर्शकों ने शोर मचाना शुरू किया—"अब शास्त्र-पाठ समाप्त करो और युद्ध में जुटो! हम लोग कब तक खड़े रहेंगे?"

पंडिताइन छज्जे पर से दौड़ कर भीतर गईं, और ओखली में से एक मोटा-सा मूसल निकाल लाईं। उसे छज्जे पर से लटका कर वह बोली—

"जी, इसे थाम लो! इससे लड़ो। परिडताइन का झोंटा मैं उखाड़ूँगी।"

परिडताइन ने जब यह देखा कि उसके प्राण-प्रिय का संहार करने के लिए ललाइन मूसल थमा रही हैं, तो वह भीतर से एक लोहे की छड़ निकाल लाई। मगर लाला ने मूसल लेने से इनकार कर दिया और परिडत जी ने छड़ नहीं ली।

परिडत जी ने कहा—"लाला घरनीदास जी, मैंने श्लोकों में अपनी सौ गालियाँ पूरी कर दीं। अब आप मेरे बदन को हाथ लगाने का साहस करें, तो जानूँ!"

"हूँ!" लाला घरनीदास ने जोर से हुंकारा। लोगों ने हिम्मत बढ़ानी आरम्भ की। दोनों पहलवान एक-दूसरे से भिड़ जाने के लिए धीरे-धीरे घेरा छोटा करने लगे। हाथ झपट्टा मारने की स्थिति में, गर्दन आगे, आँखें ऊपर, कमर कुबड़ी, पैर मुड़े हुए—और दोनों इस तरह गोलाई में चक्कर काटने लगे मानो एक-दूसरे को पीछे से पकड़ कर पटखनी देना चाहते हों। एक सीमा पर आ कर वह चक्कर भी छोटा होना बन्द हो गया।

लोगों ने लाख हिम्मत बँधाई, मगर इन घरेलू पहलवानों की यह मुद्रा नहीं बदली। जब बीस-पच्चीस चक्कर लग चुके और किसी ने एक-दूसरे को छूने का कष्ट नहीं किया, तो दर्शकों में कुलबुलाहट मचने लगी। ऊपर से ललाइन ने चुन्नू से कहलवाया—"पिताजी, मरे क्यों जा रहे हो? आगे बढ़कर लगाओ न एक झापड़! क्या अम्मा तुम्हें घी नहीं खिलातीं?"

परिडताइन भी कम नहीं थी। उन्होंने घूँघट की ओट से अपने लड़के से कहलवाया—"पण्डितराज, कतरा क्यों रहे हो? आगे बढ़ कर लगाओ न दो घूँसे! क्या माता जी तुम्हें घी नहीं पिलातीं?"

इस पर भी जब दोनों पहलवानों पर कोई प्रभाव न पड़ा तो लाला चोखेमल ने लाला को पीछे से धक्का दिया। दूसरी ओर से परिडत

रामहिलावन ने पण्डितजी को आगे सरकाया। परिणाम यह हुआ कि दोनो विरोधी एक-दूसरे से बगलें मिलाने लगे। पण्डितजी के हाथ लाला के पेट को घेरे में लेना चाहते थे, मगर उसमें वह सफल नहीं हुए। इसलिए अब उनके दोनों हाथ लाला के कन्धों पर टिक गए थे। लाला के हाथ अपने पेट के घेरे से बाहर नहीं जा सकते थे, इसलिए उन्होंने भी पण्डितजी के कन्धों पर अपने हाथ रख लिए। अब मुन्नू-मुन्नू ने ऊपर से जोर लगाना आरम्भ किया—"हाँ पिताजी, देना तो पटखनी !"

उधर पण्डितजी के बालक चिल्लाए—"हाँ बप्पा, लगाना तो एक धोबीपाट !"

मगर तेली के बैल की तरह दोनों अब उसी मुद्रा में घूम रहे थे। आखिर जब दर्शकों ने युद्ध के लिए चिल्लाना आरम्भ किया तो बहुत सोच-विचार कर पंडितजी ने एक घूँसा लाला धरनीदास की बगल में लगाया। इस पर लाला धीरे से पंडितजी के कान में बोले—"अरे, धीरे से, पंडित, धीरे से ! कहीं ऐसा न हो, कि पसली-वसली टूट जाय। ये औरतें तो अपने-अपने पति लोगों को मुर्गों की तरह लड़ा कर तमाशा देखती हैं। तुम भी समझदार हो, और हम भी समझदार हैं। लो, मैं अब एक फुलफुला धौल लगाता हूँ।"

इतना कह कर लाला ने तेजी से झपट्टा मारने की मुद्रा में पंडितजी की गरदन पर हल्का-सा वार किया। फिर एकदम उनसे चिपट कर गद्दे पर गिर पड़े। गद्दे पर गिरते ही लाला ने चारों हाथ-पैर फैला दिए। तब तक पंडित जी छिटक कर चौक के किनारे वाली एक दीवार से टकराए और भरभराकर ढह पड़े।

अब गद्दों पर से न लाला उठें, न पंडित जी ! हाँफते-हाँफते दोनों ने आँखें फाड़ दीं, मुँह बा दिए, और हाथ-पैर शिथिल कर दिए। ऊपर से यह देख कर ललाइन ने दहाड़ मारी—"हाय, हाय, यह क्या हुआ ! हाय राम, मैं तो लुट गई, रे ! मेरा तो नाश हो गया, रे !"

पंडिताइन ने गुहार मचाई—"हाय, मोरे राजा ! हाय, महापंडित ! तू कहाँ गया, रे ? तेरे बाद माता सरस्वती का कौन पूछनहार होगा ?"

भीड़ में कोई डाक्टर भी था। उसने दोनों फ्री-स्टाइल पहलवानों की नब्ज देखी, और उन्हें खतरे से बाहर घोषित किया। फिर लोगों ने दोनों के शरीर पास-पास लेटा दिए। तब अवसर पा कर, एक आँख खोल कर पंडित जी ने लाला के कान में कहा—"जिजमान, मैं तुम्हें पंडिताइन की एक फोटो उतरवा कर दे दूँगा। खूब जी भर कर देखना।"

लाला ने कहा—"अरे, चुप चुप, पंडित ! मैं छज्जे पर एक आदम-कद शीशा लगवा दूँगा। तुम उसमें ललाइन की चलती-फिरती छाया देखा करना। हमारा भारतवर्ष सोतन्तर हो गया। हम किसी के मुर्गे बन कर क्यों लड़ें ?"

"अर्थात् अब हम नहीं लड़ेंगे।"—पंडित जी ने निर्णय सुनाया।

और यों दो मुर्गों की वह लड़ाई सकुशल सम्पन्न हुई।

नाई की करामात

नाइयों के प्रति मेरी सहानुभूति असाधारण रूप से है, इस तथ्य को स्वीकार करने में मुझे तनिक भी झिझक नहीं है। हमारे हिन्दुस्तान में नाइयों ने न केवल अपनी एक विशेष जाति बना ली है, बल्कि उनके भीतर व्यक्तिगत रूप से भी कुछ ऐसी विशेषताएँ उत्पन्न हो गई हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी ढलने से ही आ सकती हैं। प्रमाण के रूप में कहना होगा कि यदि हम और आप चाहें कि किसी भले आदमी का सिर मूंड़ लें या किसी की गरदन की अयाल उतार लें, तो नतीजा यह होगा कि हत्या के प्रयत्न के अपराध में किसी मैजिस्ट्रेट की अदालत में, कठघरे के पीछे खड़े होना पड़ेगा और आसानी से पाँच-छः साल की नप जाएगी। लेकिन नाइयों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती। आप कितने ही तुनुकमिजाज हों, एक बार उनके हत्थे चढ़ जाइए; फिर जब आप वापस आएँगे, तो बार-बार सिर पर हाथ फेर कर देखेंगे कि आप मुँड़ गये हैं। यही नाइयों की जातिगत विशेषता है।

यदि नाई न हों, तो न केवल लोगों को अपने नाक-नक्श और अन्य रूप-रेखा में आदिम युग की ओर लौटना पड़ेगा, बल्कि इन्फारमेशन और ब्राडकास्टिंग विभागों का काम भी अधूरा रह जाएगा। आपको कभी अपने मुहल्ले के बारे में उन समाचारों का ज्ञान नहीं हो सकेगा जिन्हें सुनकर आप महीने में पाँच-छः बार गंभीरता के साथ मुहल्ला छोड़ देने की बात सोचते हैं। यह सरविस हमारे नाई भाई उन बालों के बदले में सरंजाम देते हैं जो हम उनके यहाँ छोड़ आते हैं।

नाइयों की तीसरी और सबसे जबरदस्त विशेषता है हिकमत के बारे में उनकी असीम जिज्ञासा। यहाँ मुझे जरा समझा कर कहना पड़ेगा। देखिए, ज्ञान और जिज्ञासा के अर्थों में थोड़ा-सा अन्तर है। जिज्ञासा ज्ञान से पहली चीज है। जब जिज्ञासा शांत हो जाती है, तो नतीजे के

तौर पर ज्ञान उत्पन्न होता है। इस नाते जिज्ञासा को केवल उत्सुकता मात्र समझ लेना भी गलती होगी। विश्व के ज्ञान का कोष इस शब्द की हिम्मत पर आगे बढ़ रहा है। इसमें सिद्धांत भी आते हैं और प्रयोग भी। नाइयों के लिए अपनी जिज्ञासा शांत करने को अबाध क्षेत्र होता है। उनकी यही विशेषता है कि वे आप से ही सिद्धान्तों की जानकारी करते हैं, और आप पर ही उनका प्रयोग करते हैं। मेरा ख्याल है कि लुकमान के बाद अगर किसी को हिकमत में दखल रखने का हक है, तो वे हमारे हिन्दुस्तानी नाई भाई ही हैं।

हमारे मुहल्ले के नाई का नाम हीरा है। हीरा नाई में वे सब विशेषताएँ हैं जो मैं ऊपर बयान कर चुका हूँ। केशवर्द्धिनी तेल के नाम से बालसफा-तेल का व्यापार भी उसने कई महीने चलागा था जो बाद में केवल इसलिए ठप हो गया कि उसके तेल का प्रयोग करके मुहल्ले के कई सज्जन असमय में ही बुद्धिमान बन गये थे और उनके मस्तिष्क के तंतुओं में ठंडी बरसाती हवा बालों के माध्यम से न आकर सीधी पहुँचती थी। वे लोग सदा-सदा के लिए बाल कटाने की झंझट से छुट्टी पा चुके थे। हीरा नाई का व्यापार उन लोगों पर रहम करने के कारण ठप हुआ हो, यह बात नहीं; बल्कि इससे स्वयं उसके बाल काटने के धंधे को नुकसान पहुँचता था!

एक दिन फुरसत में मेरे बालों पर कैंची चलाता हुआ वह बोला—"क्यों साहब, आपको तो मालूम होगा?—सुना है, अमरीका वाले चाँद पर शहर बसाएँगे!"

"जब तुमने सुना है, तो ठीक ही होगा?"—मैंने कहा।

"अजी साहब, लोगों ने तो शहरों के नक्शे बना लिये हैं। सड़कें, ट्राम-गाड़ी, मोटर-कार सब चाँद पर दौड़ा करेंगी। दुकानें खुलेंगी, बाजार बनेंगे...यहाँ तक कि चाँद की सरकार भी अलग बनेगी!"

"चाहे जो भी बने"—मैंने कहा—"लेकिन एक बात तो तय है; चाँद पर सैलून नहीं खुलेंगे। इसलिए तुम लोगों के वास्ते कोई मौका नहीं है।"

"हें-हें-हें, आप तो मेरी हँसी कर रहे हैं साहब,"--हीरा नाई मेरी बात को उड़ाता हुआ बोला।

"हीरा"—मैंने गंभीरता के साथ कहा—"भला. तुम्हें याद है कि कभी मैंने तुम्हारे सामने कोई हँसी की बात कही है ?"

हीरा ने अपनी स्मरण-शक्ति पर जोर दिया और असफल होकर बोला –"मुझे तो याद नहीं पड़ता साहब।"

"तो समझ लो कि अब भी हँसी नहीं कर रहा हूँ। वाकई चाँद पर नाइयों के लिए कोई मौका नहीं होगा। तुम्हें यह जान कर और भी ताज्जुब होगा कि इसकी वजह यह नहीं होगी कि चाँद पर पहुँच कर लोगों के बाल पैदा होने बंद हो जाएँगे; बल्कि मामला इससे उल्टा होगा। यानी वहाँ का फैशन ही दूसरा हो जाएगा।"

हीरा ने कैंची आहिस्ता-आहिस्ता चलानी शुरू कर दी, जिससे बाल जल्दी से बन कर खत्म न हो जाएँ। यही मैं चाहता भी था क्योंकि अक्सर जल्दी में वह आवश्यकता से अधिक बाल अपने पास रख लिया करता था। उसने कहा—"तो दूसरे फैशन के बाल बनने लगेंगे ?"

"अगर तुम्हें फैशन की फिलासफी मालूम होती तो यह बात न कहते"—मैंने कहा—"तुम्हें मालूम है कर्जन-कट मूँछों का फैशन कैसे चला ?"

वह बोला—"हमें तो जो कुछ मालूम होता है साहब, वह सब आप ही लोगों से मालूम होता है। आप बताइए, कैसे चला ?"

"ठीक है, तो सुनो! लार्ड कर्जन जब भारत के वायसराय बन कर आये, तो वह बहुत कमसिन थे। यों तो प्रतापी ब्रिटिश राज्य की शक्ति उनके पीछे थी, मगर अपने चेहरे को देख-देख कर उन्हें बड़ा रोना आता था। अब तक जितने भी गवर्नर-जनरल भारत में आये थे, वह उन सब में कम उम्र थे। ऊपर से तुर्रा यह कि सेनापति किचनर साहब से हमेशा उनकी खटपट चला करती थी। सेनापति किचनर अपनी लंबी-लंबी और नुकीली मूँछों का बहुत नाजायज फायदा उठाते थे। जब कभी

लार्ड कर्जन उन्हें कुछ भला-बुरा कहते, वह दोनों गाल फुलाकर अपनी मूँछों की नोकों को ऊपर उठा लेते थे, आँखें जरा चौड़ी कर लेते थे और घूर-घूरकर देखने लगते थे। अब तुम तो समझ ही सकते हो कि यह बात शिकायत के तौर पर लिखकर इंग्लैंड तो भेजी नहीं जा सकती थी। लार्ड कर्जन सहम जाते और मन-ही-मन ताव-पेंच खाकर रह जाते। उनकी स्वयं की मूँछें भूरी और बारीक थीं। इतनी तो वह कभी बढ़ ही नहीं पाती थीं कि सेनापति किचनर की मूँछों को ललकार सकें। फल यह हुआ कि उनको दिल धड़कने की बीमारी हो गयी।"

"उफ!" हीरा नाई की आँखें इस तरह ऊपर चढ़ गईं जैसे उसका दिल भी आवश्यकता से अधिक धड़कने लगा हो। "सच है"—उसने कहा—"इन्हीं छोटी-छोटी बातों से तो बीमारियाँ होने लगती हैं। फिर क्या हुआ, साहब?" कहना न होगा कि उसकी कैंची एकदम रुक गयी थी।

"संयोग से लार्ड कर्जन का डाक्टर बहुत सयाना था। जब उसने यह माजरा देखा तो तुरन्त समझ गया कि यह किचनर की मूँछों का करिश्मा है। भारत के वायसराय से यह उम्मीद करना कि वह मूँछों से डरेगा, एक बड़ी अजीब बात थी। लेकिन मनोविज्ञान में बड़ी-बड़ी विचित्र घटनाएँ मिलती हैं। डाक्टर ने लार्ड कर्जन से अकेले में पूछा—"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आपको सबसे ज्यादा डर किस चीज से लगता है?"

"अ...अ...छुरी से...गोली चाहे राइफल की भी हो, मुझे उससे कतई डर नहीं लगता"—लार्ड कर्जन ने उत्तर दिया।

"डाक्टर समझ गया कि सेनापति किचनर की मूँछें दो छुरियों की तरह दिखाई देने से ही लार्ड कर्जन डरा करते हैं। उसने एक दिन सेनापति किचनर से बातचीत की और यह नतीजा निकाला कि उन्हें भी किसी खास चीज से डर लगता है। चतुराई से डाक्टर ने मालूम किया कि सेनापति किचनर किसी हथियार से भय नहीं खाते, मगर जब

डबल-बैरल राइफल की नली उनकी छाती के सामने हो और उसके दोनों छेक, जिनमें से गोलियाँ निकल कर छाती में घुस जाती हैं, साफ-साफ दिखाई देते हों, तो उन्हें ऐसा मालूम होता है, जैसे गोलियाँ निकल कर अब उनकी छाती के पार हुईं, अब हुईं। चेहरे पर रोब जरूर रहता है, लेकिन इस पोजीशन में राइफल की नली दिखाई देने पर उनकी नसों में खून जम-सा जाता है।"

हीरा के मुँह की मुद्रा उस समय ठीक जापानी बबुए की तरह हो गयी थी। मैंने कहा—"अपना काम करते रहो जी!"

हीरा ने फिर कैंची चलानी शुरू की और बोला—"आप ठीक कहते हैं, साहब! जरूर ऐसा ही हुआ होगा। बैल भी लाल कपड़े से भड़कते हैं, हालाँकि लाल कपड़े में कोई खतरे की बात नहीं होती।"

मैंने उसकी जिज्ञासा शान्त करते हुए कहा—"तो फिर लार्ड कर्जन के डाक्टर की समस्या सुलझ गयी। उसने लार्ड साहब को सलाह दी कि वह अपनी मूँछों को इस प्रकार छँटवाएँ कि सेनापति किचनर उनसे भय खाने लगें। लार्ड कर्जन भी कुछ बुद्धू तो थे नहीं। पलक मारते सारा मामला समझ गये। बस, उसी दिन उन्होंने तुम्हारी जाति के एक कुशल व्यक्ति को बुलाया और उसने लार्ड कर्जन की भूरी मूँछों को इस फैशन में छाँटा कि वे राइफल की नली के सामने वाले दो सूराखों की भाँति दिखाई देने लगीं। अगली बार जब सेनापति किचनर किसी बात पर तड़कते-भड़कते उनके सामने आये, तो बात कहते-कहते ही उनके चेहरे की दशा बिगड़ने लगी। कुछ समझ में नहीं आया कि मामला क्या है; मगर उन्हें ऐसा मालूम हुआ मानो उनका दिल बैठा जा रहा हो और नसों में खून ने बहना बन्द कर दिया हो। वह चुपचाप लार्ड कर्जन के सामने से वापस चले आये।"

हँसते-हँसते हीरा नाई का हाल बुरा हो गया था; वह बोला—"साहब, आप भी खूब कहानियाँ गढ़ते हैं।"

मैंने कहा—"इसका मतलब है कि तुमने कभी इतिहास नाम की

कोई पुस्तक उठाकर नहीं देखी...खैर, मुझे इस बात से कोई मतलब नहीं। मेरे कहने का मतलब सिर्फ यह था कि फैशन किन-किन बातों से चलता है। अब तुम्हें मालूम हो गया होगा कि आजकल हिन्दुस्तान में लार्ड कर्जन के उत्तराधिकारियों की तायदाद क्यों ज्यादा बढ़ी हुई है। इसका प्रधान कारण यही है कि भारत सरकार के आर्म्स एक्ट दफा उन्नीस-एफ के अनुसार कोई आदमी अपने पास किसी तरह की गोली, राइफल, बन्दूक और पिस्तौल बिना सरकारी इजाजत के नहीं रख सकता। मगर भारत सरकार चाहे जितना सख्त कानून बनाये, मूँछों पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकती। लोगों से काम निकालने के लिए उन्हें अपने रोब में लाने की जरूरत होती है, और रोब में लाना, एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, चाहे वह खिलौना पिस्तौल दिखा कर डाला जाए या कर्जन फैशन की मूँछों से।"

हीरा नाई आँखें झपकाकर बोला—"तो हजूर, इससे यह नतीजा कैसे निकलता है कि चाँद पर लोगों का फैशन बदल जायगा, और यह कि उन्हें नाइयों की जरूरत नहीं पड़ेगी?"

"मालूम होता है कि तुम आजकल अखबार बिलकुल नहीं पढ़ते। अगर पढ़ते होते तो तुम्हें यह जरूर मालूम होता कि चाँद पर पहुँचने के लिए केवल अमरीका ही कोशिश नहीं कर रहा है, बल्कि रूस भी कर रहा है। दोनों देशों ने बड़े-बड़े राकेट बना लिये हैं..."

"जी हाँ, यह तो मैंने पढ़ लिया था—" हीरा ने कहा।

"और यह भी शायद तुम्हें मालूम हो कि अमरीका के लोग रूसियों से बड़े बिदकते हैं—कहना चाहिए कि उनसे डरते हैं।"

"जी हाँ, बखूबी मालूम है—" हीरा नाई ने अपने ज्ञान का प्रकाश दिखाते हुए कैंची रखकर उस्तरा उठाया।

"ठीक है,"—मैंने कहा—"तो लार्ड कर्जन की कहानी सुनकर क्या तुम यह बात नहीं समझ सकते कि रूसियों की ओर से अमरीकियों के मन में जो यह डर है (और पहले भी रहा है) उसका एक बहुत बड़ा कारण

मार्शल स्टालिन की भरवाँ मूँछें और घनी भौंहें थीं ? इतना भी अन्दाज तुम नहीं लगा सकते कि रूसी भालू मशहूर हैं और वे इसीलिए अधिक भयानक लगते हैं कि उनके बदन पर घने बाल होते हैं ? अगर तुम थोड़ी-बहुत राजनीति पढ़े होते, तो तुम्हें पता चल जाता कि मालेनकोव को इसीलिए अपना प्रधान मन्त्री का पद त्यागना पड़ा कि चेहरे-मोहरे से वह बिलकुल सफाचट थे। रूसी लोग उस मनोवैज्ञानिक प्रभाव को अच्छी तरह समझते थे जो मार्शल स्टालिन की मूँछों के कारण संसार की राजनीति पर पड़ रहा था। इसलिए उन्होंने मालेनकोव को पद से उतार कर सङ्गीन की तरह नुकीली दाढ़ी वाले मार्शल बुलगानिन को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। भाई हीरा, बीसवीं सदी की कूटनीतिक राजनीति इतनी अधिक पेंचीदी है कि इसमें प्राणि-शास्त्र, जीव-शास्त्र, रस-विज्ञान, मनोविज्ञान यानी सब-के-सब विज्ञान अपना-अपना योग देते हैं। नतीजा तुमने देखा, जेनेवा सम्मेलन में अमरीका के राष्ट्रपति आईजनहावर ने अत्यन्त विनम्रता से भले आदमियों की तरह बातें कीं और यहाँ तक उतर आये कि यदि रूस उस नुकीली दाढ़ी के पीछे छिपे हुए हरबे-हथियारों और सैनिक-भेदों के नक्शे अमरीका को दिखा दे, तो वे भी सैनिक-भेद दे देंगे। बोलो, आइक का प्रस्ताव यह था कि नहीं ?"

"जी था !" हीरा नाई को कहना पड़ा।

'इससे पहले कभी अमरीका की तरफ से यह प्रस्ताव नहीं आया।" मैंने कहा—"इससे यह स्पष्ट है कि रूस वाले तुम्हारी कला की कद्र जानते हैं और विश्व की राजनीतिक कूटनीति में उसका डट कर उपयोग करते हैं। मगर क्या तुम अमरीका वालों को निरा पोंगा ही समझते हो ?"

"अजी साहब ! सबसे पहले चाँद पर पहुँचने का जहाज तो उन्होंने ही बनाया था—" हीरा ने अमरीकावालों की अक्लमन्दी सिद्ध करते हुए कहा।

"तो जाहिर है कि पहुँचेंगे भी वे ही पहले—" मैंने कहा।

"ज़रूर, इस मामले में वे रूस वालों को पछाड़ देंगे।" हीरा ने अपना विचार प्रकट किया।

"और अमरीकावाले मनोविज्ञान में भी पीछे नहीं हैं। वे अच्छी तरह बुलगानिन महाशय की नुकीली दाढ़ी के उस प्रभाव को देख रहे हैं जो उनके राष्ट्र पर पड़ रहा है। यह भी दिखाई दे ही रहा है कि चाँद पर अमरीका वाले पहले भले ही पहुँच जाएँ, मगर पहुँचेंगे रूसी भी।"

"यह बात तो आप ने सोलहों आने सही कही—" हीरा हाथ पर उस्तरा पैनाता हुआ बोला।

"तो फिर प्रकट है कि अमरीका वाले चाँद पर पहुँच कर बाल बनवाना छोड़ देंगे—कहना चाहिए एक तरह से फैशन बदल देंगे, जिससे जब रूसी वहाँ पहुँचें तो उन्हें दिखाई दे कि सारा चाँद आदि-कालीन बनमानुसों से बसा हुआ है और धरती के प्राणियों के लिए उस पर कोई जगह नहीं है...मैं शर्त बदता हूँ कि यह न हो, तो समझ लो मैंने चाणक्य-नीति, राजनीति, कूटनीति यानी किसी भी नीति का अध्ययन नहीं किया है और मनोविज्ञान नाम की कोई विद्या इस धरती पर नहीं है। तुम समझते क्या हो, अणु-बम का अगर कोई इलाज है तो वह मनोविज्ञान में है। सिर्फ एक खोज की देर है; खोजने वाले के आगे बढ़ने की देर है।"

इस समय हीरा उस्तरे को इस मुद्रा में लिए खड़ा था कि यदि किसी बात पर अपना उत्साह प्रकट करने के लिए वह हवा में हाथ मारता, तो उस्तरा सीधा मेरी गरदन पर होता। उसकी आँखें उस बुद्धिमत्ता को ग्रहण करने की चेष्टा में थीं जिससे उसका सायका आज तक नहीं पड़ा था। चाँद, मनोविज्ञान, अणुबम, अमरीकी, रूसी, राजनीति, कूटनीति, इतिहास, अनुमान और प्रमाण इन सबकी एक बहुमेल खिचड़ी सम्भवतः उसके दिमाग में चक्कर काट रही थी, और उसकी जो सुगन्ध वातावरण में अब तक तैर रही थी, वह उसे सूँघने के प्रयत्न में निश्चल, अपनी

समस्त इन्द्रियों को एकाग्र करके खड़ा था। मैं चुपके से उसके हाथ के नीचे से खिसक गया क्योंकि अब केवल कलमें बननी बाकी रह गयी थीं, जिन्हें मैं आसानी से घर जाकर सेफ्टीरेजर से बना सकता था। हीरा के ध्यान में विघ्न उपस्थित करना अपना कम-से-कम एक घण्टा और बरबाद करना था, और मेरा टाईपराइटर बुरी तरह से मेरा इन्तजार कर रहा था।

मगर जो लोग अनुभवी हैं, वे जानते हैं कि मुहल्ले के दुःखी जन किसी भले आदमी को आसानी से घर नहीं पहुँचने देते। सामने से गुजरते देखकर पहली पुकार हुई श्यामलाल बाबू की, जो बेचारे सी० एम० ए० में क्लर्क हैं। बैठक के दरवाजे पर पहुँचते ही मैंने आश्चर्य से कहा—"अरे, तुम्हारी तो शकल ही पहचान में नहीं आती! क्या इधर कुछ बीमार हो गए थे?"

उन्होंने अपने फटी हुई सैण्डो बनियाइन पर से निगाह हटा कर कहा—"क्या बताऊँ, भाई जी, हमारा जो नया साहब आया है, कम्बख्त एक ही हत्यारा है, जो छुट्टा घूम रहा है। हिटलरी फैशन के बाल काढ़ता है, पठानी मूँछें रखता है, छाती ताने रहता है और सारे क्लर्क उससे थर-थर काँपते रहते हैं। उसने जिन्दगी बवाल बना रखी है। दिन देखता है न रात, बस काम पर जोते रखता है। आजकल छःमाही है न!"

इतने में उनका दो बरस का लाडला बेटा रोनी सूरत बनाये उनके पास आया और उन्होंने अपने सामने रखी मेज पर से एक कागज उठा कर उसकी नाक को उस पर ले लिया और उसे हाथों में किसी कीमती चीज की तरह थामे-थामे बोले—"आओ न भाई, तुम तो सारे दिन गप्प लिखते रहते हो—यार, तुम मजे में हो। न तुम्हें सम्पादकों की आँखें देखनी पड़ती हैं और न प्रकाशकों की सलाह सुननी पड़ती है। यहाँ तो मर मिटे।"

मैंने सड़क की तरफ कदम बढ़ाते हुए कहा—"अब तो चलता हूँ।

घर पर साले साहब के होने वाले ससुर आकर बैठे होंगे। उनसे कुछ व्यापारिक वार्ता करनी है"—सुन कर उनकी विनम्र मूँछें लटक गयीं।

आगे बढ़ा तो धीरजसिंह पेशकार से मुठभेड़ हुई। सब्जी का थैला लिए, बाजार से आ रहे थे जिसमें पूरा एक खेत-का-खेत भरा हुआ था। देखते ही अपनी मोटी-मोटी भौंहों से पसीना झाड़ते हुए बोले—"अल्लाह! आप हैं! अमाँ यार, तुम्हारी कहानी हमारे जज साहब ने पढ़ी थी—क्या नाम है उसका?...ध्यान नहीं आ रहा है; जिसमें तुमने तवारीख (इतिहास) पढ़ाई है। कहने लगे—इसके लेखक को एक दिन हमारे सामने लाना..."

"क्या कठघरे में?" मैंने सहम कर पूछा।

"नहीं यार, कहने लगे कि अकबर की नाक चपटी थी, जिसे तुमने नुकीली लिखा है और वह जो उनका नौरतन था—क्या नाम था उसका? हाँ, याद आया, बैरम खाँ—वही, जिसकी आँख हेमू बनिये ने फोड़ दी थी—तुमने लिखा है कि वह अकबर का उस्ताद था। उसके बारे में वह कहने लगे कि वह उसका उस्ताद नहीं था, बल्कि रिश्ते में दूर का चाचा लगता था। अमाँ यार, तवारीख को इस तरह तोड़-मरोड़ कर न लिखा करो। हमारे जज साहब सारा गुस्सा उतारते हैं मुझ पर, क्योंकि मैं तुम्हारे मुहल्ले का रहने वाला हूँ। मुझे पेंशन मिलने वाली न होती, तो मैं नौकरी छोड़ देता। अब तक छः आदमियों को फाँसी की सजा दे चुके हैं!"

मैं बार-बार पलकें झपका कर उनके मुँह की ओर देख रहा था। साहस करके मैंने कहा—"जनाब पेशकार साहब, आप के जज साहब तो बहुत बड़े इतिहासज्ञ मालूम पड़ते हैं और सचमुच उनके दीदार की जरूरत है। मेरा ख्याल तो अब तक यही था कि अकबर की नाक जरा भी बैठी हुई न थी, यह कि बैरमखाँ उनका नौरतन नहीं था, ताऊ नहीं था और न ही रिश्ते का चाचा था, बल्कि एक दबंग सेनापति था। नौरतन में से तो नौ आदमी थे और बैरम खाँ उनमें से एक भी नहीं

था। इसके अलावा हेमू बनिये ने बैरम खाँ की आँख फोड़ दी, इस तरह की बात सुनने में नहीं आयी, बल्कि खुद हेमू बनिये की आँख में ही तीर लगा था—बाकी मैं तुम्हारे जज साहब से उनकी कोठी पर जरूर मिलूँगा। तुम्हारी नौकरी जाती रही तो मेरे इतिहास पढ़ने पर लानत है।"

अपनी गली में मुड़ते हुए वह बोले—"हाँ, भाई, मिल जरूर लेना। वह रोज अपनी मूँछों की कोरें कटार की तरह पैनी करते हैं और मैं हमेशा उनकी बराबर में बैठा रहता हूँ। हर वक्त डर लगा रहता है कि नोंक अब चुभी, अब चुभी..."

अपनी किस्मत ठोंकता हुआ मैं मकान के करीब ही पहुँचा था कि वह आदमी दिखाई दे गया जिसे मैं तलाश कर-कर के थक गया था। यह हजरत एक दलाल थे। मुजफ्फरनगर में तो हमारी ससुराल है। वहाँ वे किसी दिन पहुँच गये थे। ससुर साहब मिल गये, तो उनसे न जाने हमारी क्या-क्या तारीफ की कि ससुर साहब समझे उनके जैसा मित्र इस पृथ्वी-तल पर हमारा कोई है ही नहीं। नतीजा यह हुआ कि तीज के सिंधारे के पचास रुपये उन्हें थमा कर बोले कि जाते ही थमा देना। अब तीज को गुजरे महीनों गुजर गये थे, और रानी का सिंधारा वह हजम किये बैठे थे। मैंने दूर से आवाज दी—"अरे भाई, मोहनलाल जी! मैंने कहा ऐसी भी क्या आँख चुराना!" और जब तक वह रुकें-रुकें, हम कदम बढ़ा कर उन तक पहुँच गये।

'मैं आप का पुराना फिदवी खिदमतगार हूँ'—इस भाव को प्रकट करती हुई उनकी बेतरतीब मूँछें और लम्बी-लम्बी कलमें असावधानी से हिलीं और उनके होंठों पर पड़े हुए बाल फरफराये। आँखों में दीनता भर कर उन्होंने कहा—"भैया, क्या बताऊँ, तुम्हें देख कर शरम आती है। अब कल एक दाँव लगाया है। तुम जानते हो बदनी का बाजार बस हाथ में आ-आ कर खिसक जाता है। अब की बार नफे के रुपये आये, तो बस पहला हिसाब आप का ही चुकाना है। माफ करना भाई, रुपये तुम्हारे

सवा सोलह आने के और पचास नहीं, कल्कि इक्यावन...हैं...हैं...हैं !"

मैंने कहा—"अरे, तो रुपये कौन तुम से अभी निकलवा रहा है ? पर शाम को मुझे फुरसत रहती है। पाटिए से लौट कर शकल तो दिखा दिया करो, जिससे रानी को संतोष रहे कि..."

"ठीक है, मैं जरूर आया करूँगा"—कह कर उन्होंने दीनता से हाथ जोड़े और तेज कदमों से रास्ता नापने लगे।

घर में पैर रखा ही था कि रानी ने एकटक मेरे चेहरे की ओर देख कर कहा—"कह नहीं सकती क्या बात है, मगर आज तो तुम बिलकुल भोंदू-से लग रहे हो !"

यह रिमार्क सुन कर अपने राम की सारी बुद्धिमानी हवा हो गयी। हमने कहा—"क्यों, अभी तो हम हजामत बनवा कर आ रहे हैं, अब तो और अच्छे लगने चाहिए...!"

"पता नहीं क्या बात है !" उन्होंने गम्भीरता से कहा और चेहरे की ओर गौर से देखते हुए बोली—"वह भंगियों का जमादार जो आता है न, रोज बाहर की नाली साफ कराने...आज तो सच कहती हूँ कि तुम बिलकुल उस..."

शास्त्रों में कहा है कि पति-निन्दा सुननी पाप है। रानी अपने पति की निन्दा कर रही थीं और हम उसके बुद्धू पति सुन रहे थे, यह घोर पातक था। अतः हम कानों में उँगली दे कर अपनी बैठक में पहुँचे। शीशा देख कर इतमीनान करना चाहा, तो सेफ्टी-रेजर रखा दिखाई दिया और उस समय हमें ख्याल आया कि क्यों हम बुद्धू और भंगियों के जमादार की तरह नजर आ रहे थे। हमने तुरंत 'रेजर' 'रेडी' कर के अपनी कलमें बनायीं। फिर रानी के सामने जा कर बोले—"अब तो हम तुम्हारे योग्य पति लगते हैं ?"

रानी ने फिर ढंग से मुआयना किया और बोली—"हाँ, अब सज्जन आदमी से लगते हो,...क्या पाऊडर लगा कर आये हो ?"

जाने दीजिए, औरतें तो सदा अपने जैसी बातें कहती हैं। मगर हम

अब अच्छी तरह जान गये थे कि बालों का फैशन-कट ऊपरी वेश-भूषा में कितना बड़ा महत्त्व रखता है। केश-विन्यास पर मनोविज्ञान और मनोविज्ञान पर केशविन्यास के प्रभाव का जो लेक्चर हम हीरा नाई को सुना आये थे, उस पर अब हमें गर्व हुआ। हीरा नाई भी क्या याद करेगा कि किसी से उसका पाला पड़ा था और कोई उसके सामने उसकी जाति के लिए ज्ञान का इतना बड़ा भंडार खोल गया जो सदियों से अज्ञान के गर्भ में दबा पड़ा था।

जो आदमी कैंची को इतनी तेजी से चला सकता है कि उससे एक मधुर संगीत की उत्पत्ति होती हो, वह ज्ञान का उपयोग कितनी तत्परता के साथ करता होगा, इसका अनुमान आप बिना हीरा नाई को देखे नहीं लगा सकते। अपने कैलेण्डर का अभी मैं सातवाँ परचा भी नहीं फाड़ पाया था कि बाबू श्यामलाल की पुकार नीचे से सुनाई दी। मैंने झट उनके लिए दरवाजा खोलने की गरज से कुरसी से फुदकते हुए कहा—"रानी, जब तक मैं श्यामलाल बाबू को ऊपर लाऊँ, मेज पर से इमरतियों की सब किरचें हटा कर कपड़ा फेर देना और चाय के धब्बे मिटा देना—"समझीं!"

"तुम मुझे 'रानी' मत कहा करो"—वह बोलीं।

आश्चर्य से हमारी आँखें फट गयीं। पूछा—"पर भला क्यों?"

उन्होंने कहा—"वह जो 'पुकार' फिल्म देखी थी न—वही, जिस का नया रंगीन प्रिन्ट आया था—उसमें धोबिन का नाम रानी था!"

"क्या दकियानूसी बातें करती हो!" और हम खटाखट जीना उतरते हुए नीचे पहुँचे। मगर वहाँ हमारे लिए एक दूसरा आश्चर्य उपस्थित था। हम बार-बार आँखें मल कर बाबू श्यामलाल की ओर ताक रहे थे।

वास्तव में, अगर हम उन्हें आवाज से न पहचान चुके होते तो कभी देख कर ख्याल नहीं आ सकता था कि यही वह बाबू श्यामलाल हैं, जो एक सप्ताह पहले हाथ में कोई कीमती शै लिए हम से गुफ्तगू कर रहे थे।

उनकी भरवाँ और विनम्र मूँछों की जगह इस समय दो गोल-गोल मक्खियाँ-सी बैठी दिखाई दे रही थीं। पहले जहाँ विनम्रता से ओत-प्रोत, होंठों की दोनों कोरों को छूती हुई दो पेंसिलें नीचे की तरफ लटकी रहती थीं, वहाँ अब रूसी टुन्ड्रा का साफ और श्वेत बर्फीला मैदान था जिसका आभास मात्र मिलने से ही हिटलर का दम निकल गया था।

वह मेरे साथ ऊपर आये और बोले—"हीरा नाई के बारे में तुम्हारा क्या ख्याल है?"

नाईयों के बारे में, और विशेष रूप से हीरा नाई के बारे में मेरा ख्याल क्या है, यह मैं विस्तार के साथ पहले बता आया हूँ। मैंने उन्हें कुरसी पर बैठा कर अपने उस ख्याल को विस्तार के साथ बताया।

सुन कर वह बोले—"तुम ठीक कहते हो। मेरा ख्याल है कि हमारे विदेश विभाग में इस तरह आदमियों की सख्त जरूरत है और उनके लिए स्पेशल जगह खोली जानी चाहिये। आप जानते हैं उसने क्या सरविस दी है मुझे?"

"यह तो मैं देख रहा हूँ"—मैंने फिर टुन्ड्रा और स्टेपीज के मैदानों पर एक नजर डाली।

"मैं उसका दिमाग देख कर हैरान हूँ, भाई साहब"—बाबू श्यामलाल बोले—"उसने करने से पहले सिद्ध कर दिया है। तुम्हें तो मालूम ही है कि हिटलर ने गोली मार कर आत्महत्या कर ली थी।"

"हाँ"—मैंने आश्चर्य से कहा—"कुछ लोगों का यही ख्याल है।"

"तो हीरा ने सवाल उठाया कि हिटलर ने आत्महत्या करने के लिए गोली का ही सहारा क्यों लिया? वह बड़ी आसानी से जहर खा सकता था, कुएँ में डूब कर मर सकता था, और अगर उसे लापता ही होना था, तो समुद्र भी अधिक दूर नहीं था। गोली मारने की एक ही वजह हो सकती है—और वह यह कि वह गोली से डरता था। आदमी जब डर से सुन्न हो जाता है, तो उसी चीज की शकल उसके दिमाग में रह जाती है

जिससे वह डरता है। इसीलिए जब स्टालिन बराबर बर्लिन पर चढ़ता चला आया, तो उसकी आँखों के सामने डबल-बैरल पिस्तौल के सूराख घूमने लगे और वे निकट से निकटतर आते गये। अन्त में वह उन्हीं से हलाक हुआ।"

"तो फिर?" मैंने हीरा पर आश्चर्य करते हुए पूछा।

"मैंने तुम्हें बताया था न कि हमारे साहब को भी हिटलरी तरीके से बाल काढ़ने का शौक है जो साफ तौर से उनका हिटलरी स्वभाव प्रकट करता है। बस, हीरा ने सुझाव दिया कि उन दबी हुई मूँछों को तिलाञ्जलि दी जाय और उनकी जगह कर्जन फैशन अपनाया जाय, तो साहब की भड़क से छुट्टी मिल सकती है। बात मेरी समझ में आ गयी और नतीजा तुम देख ही रहे हो...।"

कुछ देर तक तो मैं आँखें फाड़े बैठा रहा। इसके बाद अनजाने ही मेरे गले से जो ठहाका निकलना आरम्भ हुआ तो रानी अन्दर से दौड़ी आयी और किवाड़ की दरार में से झाँक कर देखने लगी कि मामला क्या है। कहना न होगा कि बाबू श्यामलाल के साथ आगे बातें करना मेरे लिए असम्भव हो गया और वह मेरी हिमाकत पर मुसकराते हुए चले गये।

मगर हीरा नाई की चतुराई अभी पूरी तरह प्रकाश में नहीं आयी थी। तीसरे दिन अचानक पेशकार साहब खाली हाथ मटकाते हुए पार्क में टहलते मिले। उन्हें देखकर मैं रुका नहीं, बल्कि मुझे रुकना पड़ा, क्योंकि वह हॉलीवुड के प्रसिद्ध अभिनेता ओरसन वैलेस की भाँति दिखाई दे रहे थे, जिसने फिल्म 'चंगेज खाँ' में चंगेज खाँ की भूमिका को इस खूबी से अदा किया था कि अगर चंगेज खाँ अपनी कब्र में से उठकर दुनिया देखने के लिए आता, तो कब्र छोड़ने पर हाथ मल-मलकर पछताता। मैं 'मेकअप' की खूबी को जानता हूँ, और ओरसन वैलेस की भौंहों को बारीक तथा ऊँची करके उसकी डबल आँखों पर जो खूँखारियत का 'टच' दिया गया था, वही वास्तव में चंगेज खाँ के रूप में उसकी

सफलता की कुञ्जी थी। खैर...कहने का मतलब यह कि धीरजसिंह पेशकार की मोटी मोटी भौंहें, जिनसे वह पसीना सूँत कर शान से जमीन पर गिराया करते थे, इस समय ऊँची चढ़ गयी थीं, बारीक हो गयी थीं और उनकी आँखों में वाकई जङ्गलीपन नजर आ रहा था। मैंने पूछा—"क्यों, क्या किसी नाटक में पार्ट करने का इरादा है?"

मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर वह बोले—"ओह, तुम हो! अभी हमारे जज साहब से तो नहीं मिले?"

"अभी तो नहीं मिला।" मैंने कहा—"मगर जल्दी ही..."

"अब कोई जरूरत नहीं।" उन्होंने कहा—"तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि हमारे जज साहब ने यह मान लिया है कि तीर हेमू बनिये की आँख में लगा था, बैरम खाँ अकबर का सिपहसालार था, और नौरतन में नौ आदमी थे, जिनमें बैरम खाँ नहीं था..."

"क्यों, उन्होंने लारेंस विनयन का 'अकबर' उठाकर देखा होगा।" मैंने कहा।

"अजी कहाँ!" वह बोले—"वह आजकल कानून की किताबों के अलावा कुछ नहीं पढ़ते। उन्होंने पहले दिन ही मेरी शक्ल देखी और उस दिन सब अपराधियों को छोड़ दिया। दूसरे दिन जब मैंने तुमसे मिलने की बात सुनायी और जोरदार शब्दों में इतिहास के सम्बन्ध में तुम्हारे ज्ञान की चर्चा की, तो मेरे मुँह पर नजरें टिकाए वह एक-एक बात मानते चले गये। मगर तुम इससे यह खुशफहमी अख्तियार मत कर लेना कि तुम कोई बहुत बड़े तवारीख के पण्डित हो। यह सब हीरा नाई की कारसाजी है।"

"सो कैसे?" मैंने विस्मित हो कर पूछा।

"अजी जनाब! जब मैं उसके पास बाल बनवाने गया तो उसने बातों-बातों में कहा कि छुरी और कटार बस एक ही चीज से मात खाती हैं और वह है तीर-कमान। तीर-कमान के सामने बड़ी-से-बड़ी तलवार

भी फेल हो जाती । मैंने तुमसे कहा न था कि हमारे जज साहब की कटार-नुमा मूछें किस तरह हर वक्त बिना म्यान के दोनों तरफ वार करती रहती थीं। बस, हीरा नाई ने मेरी भौंह को तीर कमान की शैली में तराशा और काम हो गया। जज साहब भीगी बिल्ली बन गये। मगर, यार, एक अफसोस रहा। मेरा तबादला हो गया। मैंने उनसे कितनी ही मिन्नतें कीं, मगर वह मुँह फेरे-फेरे यही कहते रहे कि—"तुम्हारे जैसे खतरनाक आदमी के साथ मैं कोर्ट नहीं चला सकता। मजबूरी है।"

क्या आप समझते हैं कि ये सब बातें सुन कर मैं वहाँ ठहर सकता था? मुझे बेतहाशा हँसते देखकर अगर लोग मुझे पागल समझ लेते तो क्या होता? मैं तुरन्त कहीं भी न ठहर कर घर आया और चारों ओर के किवाड़ बन्द करके कुरसी पर बैठ गया। इसके बाद मेरे फेफड़ों ने अपना काम करना आरम्भ किया—यहाँ तक कि रानी यह समझ कर रो पड़ी कि मुझे कुछ हो गया है, क्योंकि मैं रात-दिन कहानियों में जमीन और आसमान के कुलावे मिलाता हूँ।

शाम का समय जरा फ़ुरसत का था और मैं बदन को सीधा कर रहा था कि जीने पर आहिस्ता-आहिस्ता पैर रखते हुए मोहनलाल—वही दलाल सज्जन—अनजाने ही ऊपर आ पहुँचे और एकदम मेरे सामने आकर बोले—"नमस्ते, जी।"

मैंने सिर ऊपर उठाया, उनकी ओर देखा और मेरी भौंहें ऊपर चढ़ गयीं। उनकी आवाज से तो मैं उन्हें पहचान गया था, मगर शकल से पहचानना, मुझे शक है, कि शायद उनके परम-पूज्य पिताजी के लिए भी सम्भव न होता क्योंकि उनकी वे मूँछें, जो दोनों होठों को सदा ढँके रहा करती थीं, इस समय उनके चेहरे पर से गधे के सिर से सींग की तरह गायब थीं।

मैंने कहा—"कहो, भाई मोहनलाल तुम्हारे पिताजी तो खैरियत से हैं?"

वह दोनों कूल्हों पर हाथ रखकर बोले—"मजे में हैं। क्यों क्या बात है? पहले तो आप ने कभी उनकी खैरियत नहीं पूछी?"

"कुछ नहीं, तुम्हारा चेहरा साफ देखकर ख्याल आ गया था।" मैंने कहा—"कहो, मुझ गरीब से क्या काम निकल आया आज?"

वह बोले—"आपने कहा न था कि आया करो। सो आया हूँ।"

"ठीक है, बैठो। तुम्हारे उस दाँव का क्या रहा, जो उस दिन लगा था?" मैंने पूछा।

"बेकार रहा—" उत्तर मिला।

"तो क्या मूँछों को बेचकर खा गये?"

"अब मेरे पास है क्या, अब तो मैं दिवालिया हो गया हूँ—" वह ऐसे स्वर में बोले जिसमें किसी कदर अकड़ मिली हुई थी।

"क्या मतलब?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"मतलब यह है कि आपको मेरी मूँछें देखकर ही तो यह गुमान होता था, जैसे रकम उनमें छिपी हुई हो। ठीक है, मैंने उनका ही सफाया करा दिया है। अब मैं एक सीधा-सादा जेन्टिलमैन हूँ जिसके पास न किसी को देने के लिए कुछ है, न लेने के लिए कुछ।"

"यह उस हीरा नाई की बदमाशी होगी—" मैं चिल्लाकर बोला—"सच बताओ उसने क्या कहा था तुमसे, नहीं तो मैं कभी-कभी ऐसे जेन्टिलमैनों के लिए बहुत खतरनाक हो जाता हूँ?"

वह सहम गया और स्वयं विस्मय से मेरा मुँह ताकने लगा, जिस पर क्रोध के मारे लाली दौड़ आयी थी और दोनों होंठ भिंचे हुए थे।

उसने कहा—"बाबू जी, बिगड़ते क्यों हो? आपके रुपये सवा सोलह आने के। वे तो मैं...मैं...कल...."

मैंने नजरें जरा और सख्त कीं और पीछे हट कर जीने का वह दरवाजा बन्द कर दिया जिससे उतर कर नीचे जाया जा सकता था। उसने कानी आँख से मेरी हरकत देखी। वह ताला जो शाम को सिनेमा जाने के प्रोग्राम की वजह से उसमें अटका दिया गया था, मैंने बन्द कर

दिया और ताली अपनी जेब के हवाले की। फिर उससे बोला—"हाँ, कब देने के लिए कह रहे थे?"

मोहनलाल के चेहरे पर फिर फ़िदवी जैसा भाव आ गया और वह बोला—"वह तो मेरी जेब में है। अभी ले लीजिये।"

मैंने हाथ फैला दिया और उसने जेब से निकाल कर दस-दस के पाँच नोट मेरे हाथ पर रख दिये। मैंने उन्हें जेब में रख कर जीने का ताला खोल दिया और मुद्रा को सुविधानुसार बदलते हुए बोला—"अब कहो, हीरा नाई ने तुम्हें क्या करामात सुझायी?"

वह थोड़ी देर तक हतबुद्धि-सा बैठा रहा, फिर उठता हुआ बोला—"मैं अभी चल कर उसकी खबर लेता हूँ। उसी ने कहा था कि जिन लोगों का कर्ज मुझ पर है उनसे डरने की अब कोई जरूरत नहीं—बस मूँछों के इस खजाने को मुँह पर से सफाचट करा डालूँ और दिवालिया बन जाऊँ। उसी ने कहा था कि किसी को अब तुमसे एक पैसा भी माँगते शरम आएगी। पर यह तो सिर मुँड़ाते ही ओले पड़े...!"

और वह तेजी से जीने से नीचे उतरता चला गया।

उस दिन हँसी के मारे पेट में दर्द हो गया और हम लोगों को सिनेमा का प्रोग्राम कैंसिल करना पड़ा। बाद में सुना कि मोहनलाल और हीरा नाई में वह सिर-फुटौवल हुई कि उसके बाद अन्य ठप व्यापारों की तरह हीरा नाई ने मनोविज्ञान के इस व्यापार को भी तिलांजलि दे दी।

झक्की प्रोफेसर

काश ये कि इम्तहान न होते, कितने लड़कों की यह दिली तमन्ना है। फिर भी इम्तहान हर साल आते हैं। पास होने वाले तो पास होते ही हैं, लेकिन कितने बेचारों को फेल होना पड़ता है, इन फेल होने वालों में अनेक पास होने के असली हकदार होते हैं और अनेक फेल होने की उम्मीद करने वाले थर्ड डिवीजन की तली में अचानक ही खिसक आते हैं।

मुझे कभी ऐसा सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। यानी एकाध साल के इत्तफाक को छोड़ कर मैं एम.एस.सी. तक हर एक इम्तहान दो साल में पास किया। मैं कभी फर्स्ट डिवीजन नहीं लाया। इत्तफाक रहा एम.एस.-सी. में, जहाँ दूसरे साल भी मैं इस मनहूस विभाजन रेखा के इसी तरफ रह गया था।

यह कहने की बात नहीं है कि मैंने किस तरह घरवालों के उलाहने सहे। बस यह हद थी कि सगाई और ब्याह साथ-साथ होने वाले थे कि सगाई होकर रह गयी।

फेल हो जाने के मेरे अपने तर्क थे, अपने कारण थे। जी घोंट कर पढ़ना, पढ़ कर पास हो जाना, फिर तेली के बैल की तरह किसी डिपार्टमेंट में जुत जाना मुझे सख्त नापसंद था। मैं उन विद्यार्थियों में से था, जो जिंदगी को खेल समझते हैं, खेल-खेल कर सीखते हैं और अपने आने वाली जिंदगी का सपना भी जिनके लिए एक मजेदार खेल ही होता है।

मेरे इन ख्यालात से पिताजी को सख्त एतराज था। जब छमाही का नतीजा भी लिया-दिया सा ही रहा, तो पिताजी की चिट्ठी आयी। तुम्हें शरम नहीं आती ? तुम कभी जिंदगी में तरक्की नहीं कर सकते।

हरामखोरी सूझ रही है। यही हाल रहे तो कहे देता हूँ, भीख माँगा करोगे......' वे ही माता-पिताओं की रटी-रटाई पुरानी बातें थीं।

हमेशा की तरह मुझे इसका कुछ मलाल न होता, अगर पिताजी ने साथ में कुछ व्यावहारिक कदम न उठाया होता। इम्तहान की तैयारी की छुट्टियों में मेरे घर आने की उन्होंने जरूरत नहीं समझी। होस्टल को छोड़ कर कहीं फ्लैट लेकर रहने का आदेश मिला था। खबरदारी के लिए पुराने खानदानी नौकर बिरजू के साथ रहने का इन्तजाम किया गया था, जो मुझसे ज्यादा पिताजी की बात को समझता था। जेब खर्च घट कर आधा रह गया था इस सब आयोजन के साथ मुझे एम.एस.सी. में फर्स्ट क्लास फर्स्ट आने की हिदायत की गयी थी अभी से पापड़ बेलने के सिवा और कोई चारा ही नहीं रह गया था।

पत्र भी अपने-आप नहीं आया था, बिरजू ही साथ लेकर आया था। हर एक काम में तुरताफुरती पिताजी की पुरानी आदत थी। उसी दिन हजरतगंज में फ्लैट किराये पर लिया गया, उसी दिन सारा सामान होस्टल से ढोया गया और फ्लैट के इकट्ठे चालीस रुपये माहवार के किराए को आधा करने के लिए उसी दिन के शाम के अंक में एक साथी किराएदार की आवश्यकता का विज्ञापन दिया गया। यह था पिताजी का आतंक और उनके सेवक बिरजू की तत्परता।

जी चाहता था कि कभी उस विज्ञापन का उत्तर न मिले और अपनी अक्ल के लिए पिताजी को आटे-दाल का भाव मालूम हो। लेकिन बदकिस्मती को क्या कहिए। रात के ठीक नौ बजे, जब कि दूसरे शो में भेज कर मैं बिरजू से बड़ी मुश्किल से पिंड छुड़ा कर लेटा ही था कि द्वार पर खटपट सुनायी पड़ी। मन मार कर, छिटकी चाँदनी का मोह त्याग किंवाड़ खोलते ही एक बहुत ही तहजीबयाफ्ता सलीकेदार सज्जन के दर्शन हुए। सीधासादा लखनवी पाजामा और कुरता, चेहरे पर अटूट गंभीरता, आयु लगभग मेरे जितनी। मैंने पूछा, "कहिए मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूँ?"

उन्होंने कहा मेरा नाम गुलशन राय है। यूनिवर्सिटी में एक छोटा-सा प्रोफेसर हूँ। अक्सर शाम का अखबार जरूर पढ़ता हूँ, और आज शाम के अखबार में जनाब ने रूममेट के लिए जो इश्तहार दिया था उसी के सिलसिले में हाजिर हुआ हूँ।" प्रोफेसर साहब सब कुछ एक ही साँस में बोल गये।

मैंने कहा, "बड़ी खुशी की बात है। इस फ्लैट का किराया चालीस रुपया महवार है। अगर आप आना चाहें, तो बीस रुपया हर माह आपको देने होंगे। तबीयत करे तो चाहे अभी सारा सामान ले आइए।"

प्रोफेसर साहब 'अच्छी बात है' कह कर उलटे पैरों वापस लौट चले। अब मैं चौंका। कहीं यह भला आदमी लदाफदा रात को ही न आ धमके। मुझे अपनी नींद में खलल दुनिया की किसी भी बुराई से बुरा लगता था। मैंने आवाज दी, "प्रोफेसर साहब, प्रोफेसर साहब।"

वह वापस आ गए। मैंने माफी माँग कर कहा, "गलती हो गयी जनाब। मकान मालिक से पूछना पड़ेगा। लेकिन खातिर जमा रखिये, इजाजत मिल जाएगी। इसलिए मेहरबानी करके कल दस बजे तशरीफ लाइए।"

अगला दिन भी ज्यादा दूर नहीं था। लेकिन प्रोफेसर साहब ने दस बजने की इंतजार नहीं की। ठीक आठ बजकर पैंतालिस मिनट पर वह आ मौजूद हुए। यह कोई खास एतराज की बात नहीं थी फिर भी मैंने विनोद के लिए पूछा, "क्या दस बज गये प्रोफेसर साहब ?"

"माफ कीजिए" "उन्होंने बड़ी आजिजी से कहा।" "मुझे यह याद ही नहीं रहा कि आपने कितने बजे आने के लिए फरमाया था। दिल में डरता रहा कि अगर कहीं आपने छः बजे आने के लिए कहा होगा, तो आप इन्तजार देखकर किन्हीं और साहब को मौका न दे दें।"

मुझे उनकी याददाश्त पर हँसी आए बिना न रही। मालूम होता था, वह सारी रात इसी उधेड़बुन में थे। सोचा, साथी अच्छा मिला, इनके साथ ये तबालत के दिन बड़े मजे में कट जाएँगे।

प्रोफेसर साहब काफी देर तक चुप रहे। फिर बिना किसी हिलोहुज्जत के अपनी कुरसी मेरे टेबिल के सामने खींच ली। चाय का प्याला मुँह से लगाते हुए मैंने पूछा, "आपका वतन ?"

"मैं लखनऊ की ही पैदाइश हूँ," उन्होंने कहा। काफी देर तक वह चाय के प्याले में उठती भाप को देखते रहे, फिर सहसा पूछ बैठे, "आपने क्या पूछा था ?"

"मैं आपकी जन्मभूमि के बारे में पूछ रहा था" मैंने कहा।

"ओह," वह बोले। "मेरा मादर वतन लखनऊ ही है।"

अब मैंने सीधे होकर ध्यान से प्रोफेसर साहेब के चेहरे को देखा। वह बड़े ध्यान से चाय पी रहे थे। कुछ देर ठहर कर मैंने अपना शक पूरी तरह रफा कर लेना चाहा। "आप कहाँ के रहने वाले हैं, प्रोफेसर साहेब ?"

चाय का प्याला होठों से हटा कर उन्होंने भौंहें सिकोड़ी, जैसे कुछ सोच रहे हों। फिर बोले, "मेरा ख्याल है कि मैंने आपको अभी-अभी तो बताया था। मैं शुरू से ही लखनऊ का रहने वाला हूँ।"

उसी दिन शाम को कुछ समय के लिए बिरजू से समझौता हुआ। मैंने कल उसे दूसरे शो में जाने दिया था। उसकी खोपड़ी की डायरी में बेना टके हुए मुझे आज पहले शो में जाने का पूरा-पूरा हक था। मैंने प्रोफेसर साहब को पकड़ा। "चलिये साहब।"

प्रोफेसर साहब चौंके, "कहाँ ?"

"अरे, आप इतनी जल्दी भूल गए।" 'महल' देखने का ख्याल जाहिर किया था न आपने !" मैंने विस्मय की मुद्रा से कहा।

सुनकर उन्होंने सिर खुजलाया। "महल अच्छा खेल है, इसलिए मैंने कहा था। अच्छी बात है चलिए।"

मैंने मुँह में रूमाल ठूँस लिया। प्रोफेसर साहब से कभी किसी फिल्म के बारे में बात नहीं हुई थी। अब तय हो चुका था, निश्चय ही प्रोफेसर साहब के दिमाग की कोई न कोई कल गुम थी।

दो चार दिन रहते-रहते जब यह पता चला कि प्रोफेसर साहेब पिछले साल ही एम.एस.सी. में सारी यू. पी. में तीसरे नंबर पर थे तो एकाएक विश्वास नहीं हुआ। कैसे यह आदमी साइंस के इतने सारे प्रयोगों को याद रख सका होगा। लेकिन इस दिशा में प्रोफेसर साहब की स्मरण शक्ति किस गजब की थी यह जल्दी ही पता चला। एक दो प्रयोग उन्होंने इस ढंग से मुझे समझाए कि बिना किसी खास दिक्कत के वे मेरे दिमाग में घुस कर बैठ गए।

* * * *

एक दिन एक घटना घटी। रोज की तरह सुबह उठते ही मैंने प्रोफेसर साहब के बिस्तरे पर नजर दौड़ायी तो वह नदारत थे, बड़ा तआज्जुब हुआ। आज यह पहली बार ऐसा हुआ था कि मेरा साथी मुझ से भी पहले उठ गया था। नित्य नियम के अनुसार मैंने स्टोव जला कर उस पर चाय का पानी चढ़ाया और आवश्यक काम-धाम से निबटने चला गया।

वापस आकर देखा, चाय का पानी उबल रहा था किन्तु प्रोफेसर-साहब का कहीं पता न था। मैंने बिरजू को बुलाकर पूछा, "प्रोफेसर साहब कहीं गए हैं क्या?"

"मुझे क्या पता?" बिरजू ने आँखें मटकायी, मुझसे कह कर तो गए नहीं।

बारह बजे तक प्रोफेसर साहब का इन्तजार करके मैं होस्टल चला गया। बिरजू को हिदायत करता गया। प्रोफेसर साहब मेरे आने तक कमरे पर ही रुके रहें, ताकि शाम का प्रोग्राम इकट्ठे सोचा जा सके। लेकिन दो दिन तक प्रोफेसर साहब न आए।

दिल में धुकड़पुकड़ मची। कहाँ चले गये प्रोफेसर साहब। बिना सूचना दिए चला जाना, इतने समय तक उनकी हवा का भी पता न लगना कुछ माने रखता था। प्रोग्राम गया चूल्हे में, मन में चिंता सवार हो गयी। कहीं कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी इतना बढ़िया स्कालर। प्रायः

ऐसे काबिल आदमी चुपचाप बिना सूचना दिए इस पापी दुनिया से कूच कर जाते हैं। इन्तजार करते-करते मैं न मालूम कब सो गया।

अचानक दरवाजे पर थपथप सुनाई दी। कोई हथेली से किवाड़ बजा रहा था। टार्च हाथ में लेकर दरवाजे पर आया। टार्च जलाकर मैंने चटखनी पर हाथ डाला और एकदम किवाड़ खोल कर टार्च की रोशनी बाहर फेंकी।

अगर मुर्दा कब्र से उठकर भाग खड़ा हो, तो उसकी सूरत उस समय के प्रोफेसर के हुलिए से बदतर नहीं होगी। बाल रूखे और अस्तव्यस्त, कपड़े जैसे प्रोफेसर सारे लखनऊ की खाक छान कर आए हों, आँखें बंद—बाद में ध्यान आया कि यह टार्च की रोशनी की वजह से हो गई होंगी। गिरती हुई टार्च को संभाल कर मैं हल्की आवाज में चिल्लाया, "प्रोफेसर............!"

'प्रोफेसर!' मेरे मुंह से ताज्जुब की एक चीख निकली। प्रोफेसर साहब खड़े नहीं थे, बैठे थे, बदन पर जांघिये के अलावा और कोई कपड़ा दिखायी नहीं दे रहा था। मुंह पिटा पिटा सा लग रहा था और नंगे शरीर पर धूल और खून के धब्बे दिखायी दे रहे थे।

"यह आपकी क्या हालत है, प्रोफेसर साहब!" मैंने पूछा।

प्रोफेसर मेरे आगे बढ़े हुए हाथ का सहारा लेकर उठे। बिजली की रोशनी में उनके बदन पर कई जगह खरोंच के निशान चमके। हम दोनों उन्हें पकड़ कर कमरे में लाए और वह आते ही धड़ाम से अपने पलंग पर गिर पड़े उन्होंने सिर्फ इतना बताया कि किसी ठग ने उन्हें अकेले रात को घूमते देखकर कपड़े उतरवा लिये थे।

मैं और बिरजू दूर बैठे प्रोफेसर को विचित्र दशा पर झींकते रहे। आखिर यह आदमी कहाँ जाता है, दिन भर क्या करता है और रात को हारे हुए जुवारी की तरह क्यों उसकी सारी श्री मारी जाती है! मैंने यह सब जानने का निश्चय किया था। न जानने में खतरा था।

* * * *

अब प्रोफेसर साहब की हरएक हरकत पर आँख रखी जाने लगी। यहाँ तक कि हमलोगों को पता था कि प्रोफेसर उस रात ग्यारह बजकर तीन मिनट पर सोने के लिए पलंग पर गये, और पौने बारह बजे से आधी मिनट पहले सो गये। सोये हम लोग भी लेकिन जब आँखें खुलीं, तो देखा कि सबेरा हो चुका था और प्रोफेसर की चाय स्टोव पर खौल रही थी, स्वयं वह भी उसके बराबर कुरसी डाले चिन्तातुर बैठे थे। जाहिर था कि आज वह हमसे पहले उठ बैठे थे।

मैं चुपचाप उठा और कुछ ही देर में मेरी चाय भी तैयार हो गयी। वैसे भी आज मेरी परीक्षा का नतीजा आने वाला था। रोज की तरह आठ बजे अखबार के आने की इन्तजार नहीं की जा सकती थी। अखबार को मेल से उतरते ही पकड़ने की योजना थी, ताकि अपने सौभाग्य या दुर्भाग्य की सूचना ज्यादा से ज्यादा दो ही घण्टे पहले मिल जाये।

मैंने उनसे पूछा—"किधर का प्रोग्राम है, साहब?"

उत्तर मिला—"कहीं का नहीं।"

बड़ा गुस्सा आया, मुझे उनसे भी ज्यादा जल्दी थी, इसलिए मैं तो स्टेशन पर जल्दी पहुँचने के लिए निकल खड़ा हुआ।

कालिज के साथियों ने स्टेशन पर रौनक कर रखी थी। कुछ सज्जन नतीजे के इन्तजार में प्लेटफार्म से गरदन उचका कर एक फर्लांग दूर खड़े सिगनल को देख लेते थे और अब उनका नतीजा कहाँ होगा इसका अन्दाज लगाते थे। कुछ लोग समदर्शी बने मटरगश्ती करते और चाय की स्टॉल पर रुकते इधर-उधर घूम रहे थे।

अचानक क्या देखता हूँ कि हमारे प्रोफेसर साहब भी शङ्कित मुद्रा बनाये दरवाजे से स्टेशन के अन्दर तशरीफ ला रहे हैं, देखकर तबियत झख हो गयी। आगे बढ़कर कहा—"वाह, प्रोफेसर साहब! अगर आपको यहीं आना था तो बता क्यों न दिया? एक ही ताँगे में न आ जाते।"

प्रोफेसर ने खिसियानेपन के अलावा और कोई भाव प्रकट नहीं किया। तभी कोई चिल्ला उठा—"गाड़ी आ गयी, गाड़ी आ गयी।"

गाड़ी आ नहीं गयी थी, आ रही थी। इसी फेर में मैंने फिर जो प्रोफेसर की तरफ निगाह उठायी, तो वह वहाँ नहीं थे। मैं इधर-उधर उन्हें ढूँढ़ने चला, तो गाड़ी ने धड़धड़ाते हुए प्लेटफार्म के अन्दर प्रवेश किया।

हम सब अखबार वाले डिब्बे की ओर लपके। कुछ देर में ही दो-चार सहपाठियों के हाथ में अखबार दिखायी दिये, लेकिन तुरन्त ही लोप हो गये। मैं भी किसी प्रकार एक प्रति प्राप्त करने में सफल हुआ और अखबार को दबाकर भीड़ चीरता हुआ बाहर निकल आया।

अभी नतीजे का पृष्ठ पूरी तरह खोल भी नहीं पाया था कि अखबार मेरे हाथ से छिन गया। झुँझलाकर आँखें ऊपर उठायीं तो वह प्रोफेसर साहब थे। वह वहीं जमीन पर अखबार फैलाकर बैठ गये और जल्दी-जल्दी रोल नम्बरों पर अँगुली फेरने लगे। उग्रता से उनकी आँखें फटी जा रही थीं और अखबार के ताजे छापे पर सख्ती से अँगुली फिरने के कारण कालख फैल-सी गयी थी।

मैं अभी पूछने ही वाला था कि कौन-सा रोल नम्बर देखना था उन्हें कि वह बड़े जोर से उछले और बच्चों की तरह छाती से मुट्ठियाँ लगा-लगाकर हवा में उछालते हुए चिल्लाने लगे—"पास हो गया, पास हो गया, मैं पास हो गया ...।"

चारों ओर विद्यार्थी जमा हो गये। सभी हैरत से उनका मुँह ताकने लगे। हम सभी को यह मालूम था कि वह यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर हैं और एम० एस० सी० पिछले साल पास कर चुके हैं, और वह भी ऑनर्स में।

प्रोफेसर साहब का चेहरा लाल हो गया था और वह अपना जोश रोक नहीं पा रहे थे। अपने पास होने की घोषणा करते हुए वह प्लेट-फार्म पर कूदने लगे। यहाँ तक कि उनकी जबान तुतलाने लगी।

निश्चय हो गया था कि वह पागल हो गये हैं। दो-चार साथियों ने उन्हें पकड़ा और स्टेशन के वेटिंग रूम में ले आये। बरफ का ठण्डा लेमन उनके गले के नीचे उतारा गया। लगभग पन्द्रह मिनिट में वह होश में आये। अब वह स्वयं अपनी हरकत पहचान गये थे। शरम की वजह से उनकी निगाह जमीन की ओर झुकी जा रही थी।

मैंने पूछा—"अब तबीयत ठीक है, प्रोफेसर साहब ?"

उन्होंने सहमति में गरदन हिलायी।

मैंने फिर पूछा—"तो बताइये न कौन पास हो गया ? क्या हो गया था आपको ?"

सभी लोगों के सामने उनका पागलपन प्रकट हो चुका था और पोजीशन बचाने की गरज से सफाई देनी जरूरी हो गयी थी। उन्होंने बचाव के लिए कुछ टालमटोल करनी चाही। लेकिन निगाह उठाते ही अपने को चारों ओर से व्याघ्र मुखों से घिरा पाया। वह हँस पड़े, बोले—"आप लोगों को आज हँसने का मसाला मिल गया है। हकीकत यह है कि इण्टर में मेरा जो रोल नम्बर था वह बराबर तीन साल से इण्टर के नतीजों में नजर नहीं आया। इसी तरह बी० ए० सी० में मेरा जो रोल नम्बर था उस रोल नम्बर का कोई भी विद्यार्थी दो साल से पास नहीं हुआ। मेरे रोल नम्बर का एम० एस० सी० का विद्यार्थी भी पिछले साल फेल हो गया। अब बताइये क्या यह खुशी से पागल हो जाने की बात नहीं थी कि मेरे सबसे पिछले रोल नम्बर का लड़का इस साल, फर्स्ट क्लास फर्स्ट पास हुआ है ?" लड़के मुँह की ओर देखने लगे।

कुछ साथी वाकई हँस पड़े। पागल कहें तो उस आदमी को और क्या कहें ?

"दोस्त !" उन्होंने मुझे लक्ष्य करके कहा।

"पिछली दो बार भी मेरे गायब होकर बदहवास वापस आने की यही वजह थी। इस बार भी अगर मैं फेल हो जाता, तो शायद कभी

घर वापस न लौट सकता, खुशी का दौरा बहुत जल्दी उतर गया। इस बार रंज का दौरा शायद न उतरता। मैंने कहा न था कि एक इल्लत मेरे पीछे लग गयी है।

हममें से कुछ लड़के उनके सामने भारी शरम महसूस कर रहे थे। दुनिया में कोई ऐसा आदमी भी हो सकता है, जो अपने विद्यार्थी जीवन के रोल नम्बरों के पास फेल होने की खुशी और गम को उससे भी ज्यादा महसूस कर सकता है, जितना कि खुद असली हकदार भी न कर सके होंगे। वह आदमी चाहे वहमी या पागल ही क्यों न कहा जाये, लेकिन कितना नफीस था वह वहम।

स्थिति का मनोवैज्ञानिक पहलू समझ में आते ही अधिकांश लड़कों का हँसना रुक गया था। मैंने पूछा—"क्या रोल नम्बर था आपका एम० एस० सी० में ?"

प्रोफेसर इस बार बुरी तरह झेंप गये। होंठ दबाकर उन्होंने उत्तर दिया—"चार सौ बीस।"

अब तो मैं उछल पड़ा—"मिठाई खिलाइये, प्रोफेसर साहब ! यह तो मेरा रोल नम्बर है।"

प्रोफेसर आँखें फाड़कर मेरी ओर देखने लगे। लड़कों में हल्ला मच गया। इसीलिए मैंने अपना रोल नम्बर आज तक किसी को भी नहीं बताया था। साथियों ने मुझे उठाकर हवा में उछाल दिया।

उस दिन उस शिक्षित और सभ्य पागल की एक महीने की तनख्वाह उड़ गयी और लखनऊ के मशहूर हलवाई लाला जग्गूमल को त्योहार की बिक्री का मजा आया।

कलह की करतूत

'पैज !' इस नितान्त देशी शब्द के अर्थ अब हमने पड़ोसी का शब्द-कोष माँग कर देखा, तो ये मिले—प्रण, पन, हठ, प्रतीज्ञा, टेक, होड़। लेकिन इतने से ही क्या इस महान् शब्द की महत्ता स्पष्ट हो जाती है? कहना ही होगा कि नहीं। इस शब्द के भीतर युद्ध की एक अत्यन्त गूढ़ टेकनीक छिपी हुई है। अर्थ गुरिल्ला युद्ध के कुछ आस-पास जाकर पड़ता है। यों समझिए कि आप हमारे पड़ोसी हैं। घर से निकल कर बाहर दुनिया को अपनी शकल दिखाने के लिए हम दोनों एक ही रास्ते का प्रयोग करते हैं। हम ठहरे बाबू आदमी। और आप? मान लीजिए कि आप हैं पंसारी। तो आपको हमारे सफेद कपड़े क्यों भाने लगे? बस, हम जहाँ दस बजे के करीब दफ्तर जाने के लिए बन-सँवर कर बाहर निकले, कि आपने फौरन पाँच-सात बाल्टी पानी घर से बाहर निकलने के कच्चे-पक्के रास्ते में लुढ़का दिया। हम अगर उस कीचड़ में अपनी बारीक तल्लों की चप्पलें रखते हैं, तो हमारे पैरों में जरूर मेंहदी लग जाएगी, और उसके बाद चप्पलों की छपाके से इस्तरी की हुई पैंट के ऊपर छींटें आना लाजमी है। हम आप से निवेदन करते हैं, हाथ जोड़ते हैं, कहते हैं कि ऐसा न किया कीजिए। मगर आप तो हमसे जलते हैं। आप बराबर रोजाना अपनी यह हरकत जारी रखते हैं। तो हम कहेंगे कि आपकी हमारी 'पैज' हो गई।

इस शब्द की इतनी व्याख्या किए बिना मास्टरनी और पोस्टमास्टरनी के बीच चलने वाले पुश्तैनी युद्ध की गहराई जाहिर नहीं की जा सकती थी। दोनों मास्टरनियाँ एक ऐसे घर में अपने पतियों सहित रहती थीं, जिसके नक्शे पर यदि बीचों-बीच पेंसिल से एक रेखा खींच दी जाए, तो

बाईं तरफ वाला हिस्सा पोस्टमास्टरनी का होगा, और दाईं तरफ वाला मास्टरनी का। घर के आमने-सामने का डिजाइन एक-सा ही था, मगर दुर्भाग्य से दोनों घरों का गुसलखाना और देहलीज एक थी, और ये दोनों चीजें इस कल्पित विभाजक रेखा पर इस तरह पड़ती थीं कि दोनों आधी-आधी कट जाती थीं। इस विभाजक रेखा पर कोई दीवार नहीं खड़ी थी, न तो चूने से निशान डाला हुआ था। यह रेखा दोनों मास्टरनियों के कपाल में थी। कपाल के भीतर जो वस्तु होती है, वह प्रकृति से ही कुछ चञ्चल होती है। इसलिए यह दिमागी लाइन कभी-कभी गड़बड़ा कर साँप की तरह लहरिये खाने लगती थी। अगर हम उस विभाजक रेखा को कश्मीर मान लें, तो उसके एक तरफ हिन्दुस्तान था और दूसरी तरफ पाकिस्तान!

पोस्टमास्टरनी और मास्टरनी दोनों ही रेखागणित में कमजोर थीं। अन्य विषय मजबूत थे, यह कहा नहीं जा सकता। हाँ, समय-समय पर काफी तर्कशीलता का परिचय दोनों की बातों से मिलता था। उदाहरण के लिए एक दिन इस सीमा-रेखा को ले कर दोनों के बीच लड़ाई हुई, तो मास्टरनी ने कहा—"मेरे मास्टर जी को तेरे मरद से दस रुपये ज्यादा मिलते हैं! तूने समझ क्या रखा है?"

"तो इससे क्या हुआ?" दूसरी तरफ से उत्तर आया—"यह भी तो देख कि किसकी इज्जत ज्यादा है। तेरा मरद तो बस मास्टर ही मास्टर है! मेरा वाला तो 'मास्टर' के साथ-साथ 'पोस्ट' भी है। इज्जत के काम में तनखाह बीस रुपए भी कम हो, तो कौन देखता है?"

मास्टरनी के मन में यह बात चुभ गई। उसे निरुत्तर तो रह जाना पड़ा ही, साथ ही अपने मास्टर पर भी बहुत क्रोध आया। वह बेचारा सींकिया पहलवान था। जब दिन भर स्कूल में पढ़ा कर संध्या को घर लौटा, तो मास्टरनी ने हाथ-पैर धुलाए बिना ही खाना इस तरह सामने रख दिया, मानो आए-गए को निबटाना हो। मास्टर बेचारा संतोषी जीव ठहरा। चुपचाप पलकें झपका कर खाने की तरफ हाथ बढ़ाया ही था,

कि मास्टरनी ने कहा—"क्यों जी, जिन्दगी भर मास्टरी ही करते रहोगे? रोज अखबार पढ़ते हो। कहीं पोस्टमास्टरी की जगह नहीं मिलती क्या तुम्हें?"

मास्टर जी खाना-पीना भूल कर पत्नी का मुँह ताकने लगे। फिर बोले—"पागल हो गई हो? पोस्टमास्टर बन कर क्या अपनी मिट्टी खराब करवानी है? देखती नहीं पड़ोसी को? बेचारे हफ्ते में छः दिन गाँव के डाकखाने में जाते हैं, और इतवार को घर आते हैं। दिन भर झुक कर लिखते-लिखते कमर दोहरी हो गई है। पचासे में ही सारे बाल सफेद कर बैठे हैं। मैं अच्छा-खासा मास्टर हूँ। मुझे पोस्टमास्टर बनने की क्या जरूरत है?"

"पर इज्जत तो उस काम में ज्यादा है," मास्टरनी ने कहा, और उसने फिर 'मास्टर' के साथ 'पोस्ट' होने का अतिरिक्त लाभ बताया।

सुन कर मास्टर जी ने पेट पकड़ लिया, और हँसते-हँसते दोहरे हो गए। फिर कहने लगे—"चौधरन, तू अपनी दिलजमई के लिए इतना समझ रख, कि अँगरेजी में 'पोस्ट' के माने हैं, 'बाद में होने वाला!' पोस्टमास्टर पहले नौकर होता है, बाद में मास्टर। मास्टर पहले मास्टर होता है, बाद में नौकर। समझ गई?"

"खूब समझ गई," मास्टरनी ने स्वीकार किया—"अब तो मैं उसकी चुटिया पकड़ कर रगड़ दूँगी।"

"किसकी?" मास्टर जी ने घबरा कर पूछा।

"किसीकी नहीं।" मास्टरनी ने उनकी घबराहट कम की।

"तो फिर मैं खाना शुरू करूँ?"

"हाय राम! मैं तो भूल ही गई थी। मैंने तुम्हारे हाथ-पैर तो धुलाए ही नहीं। ठहर जाओ। पानी ले आऊँ।"

वह विद्वत्ता की बात मास्टरनी के दिमाग में जगह बना कर बैठ गई, ताकि जब मौका आए तो उसका इस्तेमाल किया जाए। अपने पतिदेव की ओर से उसके दिमाग में एक ही शिकायत बाकी थी, और वह यह

कि इनके भीतर अपना अधिकार स्थापित करने की तनिक भी प्रवृत्ति नहीं है। ये बड़ी जल्दी दूसरों को अपने ऊपर हावी कर लेते हैं, और गंभीर-से-गंभीर बात को बच्चों जैसी बातें कह कर उड़ा देते हैं।

इसी कारण पोस्टमास्टरनी की ैज की वजह से जब मास्टरनी को दिक्कत उठानी पड़ती, तो वह मन-ही-मन इसे जहाँ पोस्टमास्टरनी का हमला समझती थी, वहाँ मास्टर जी के प्रति दंड-व्यवस्था मानती थी। घर में नल एक ही था। पोस्टमास्टरनी जब भी यह देखती, कि मास्टर नहाने के लिए कपड़े उतार चुका है, और तौलिया कंधे पर डाल लिया है, तभी खाली बाल्टी नल के ऊपर टाँग देती। बाल्टी के टँगे-टँगे ही उसमें से पानी भर-भर कर चौक धोने लगती, या दूसरे बरतन भरने लगती। इसका नतीजा यह होता, कि मास्टर जी को कुछ देर नंगे-बदन हरिभजन करना पड़ता। नहाने का अवसर सर्वदा पोस्टमास्टरनी की दया पर निर्भर करता। वह कभी-कभी कपड़ों का ढेर सवेरे-ही-सवेरे नल पर रख देती, और ऐन मौके पर पानी की बाल्टी नल पर लटका कर गुसलखानों में कपड़े धोने बैठ जाती। मास्टरनी को चिढ़ाने के लिए मास्टर जी के ऐन स्कूल जाते समय वह सुँघनी सूँघती थी। इस पर मास्टरनी बड़बड़ाया करती—"नाक में कीड़े पड़ेंगे! पहले जनम की सूरपनखा है! मैं तो कहूँगी, कि जो दूसरों का असगुन मनावे उनकी नाक गल कर गिर पड़े!"

मास्टरजी मुस्करा कर निकल जाते, और पोस्टमास्टरनी बराबर छींकती रहती।

पोस्टमास्टरनी का जवान लड़का उसी हायर सेकैंडरी स्कूल में इन्टर में पढ़ता था, जिसमें मास्टर जी पढ़ाते थे। मास्टर जी के जाने के बाद ही प्रायः वह घर से निकलता था। लड़कों में शैतान का प्रतिनिधित्व उसी के हाथ में था। एक-दो बार उसके जाते समय मास्टरनी ने भी छींकने की कोशिश की। मगर जिसका काम उसी को साजे!

ये शुबार थे, जो लक्ष्मी-पूजन से चार दिन पहले निकले। पोस्ट-

मास्टरनी जहाँ उम्र में बड़ी थी, वहाँ नए-नए तर्क उपस्थित करने में भी किसी कदर तेज थी। दूसरी ओर मास्टरनी को शारीरिक आकार-प्रकार का लाभ उससे कहीं अधिक था। समय पड़ने पर उसका एकमात्र ठोस तर्क था प्रतिस्पर्द्धिनी की चुटिया रगड़ देना और यही उस दिन भी अमल में आया।

बात यों हुई कि मास्टरनी ने नहा कर धोती छत पर फैलाई। अन्य सब धोतियाँ मैली थीं। वह जल्दी-से-जल्दी सुखाकर उसे पहन लेना चाहती थी। इसलिए उसने उसे इकहरी फैलाई—इस तरह कि उसका एक सिरा बाँधा कश्मीर को पार कर के हिमालय पहाड़ से, और दूसरा बाँधा अमृतसर में। दिन था शनिवार का। पोस्टमास्टरनी ने चनों का फंका मारने के लिए मुँह जो ऊपर को किया, तो मास्टरनी की फैली हुई धोती पर नजर पड़ी। वह मुँह में चनों का मलीदा बनाती हुई लपकी छत पर। मास्टरनी ने ताड़ लिया। वह भी पीछे-पीछे छत पर जा पहुँची। अभी पोस्टमास्टरनी ने धोती के हिमालय से बँधे कोने को हाथ लगाया ही था, कि मास्टरनी गरज पड़ी—"ओ बाद में होने वाली मास्टरनी! अगर मेरी धोती को हाथ लगाया, तो चुटिया रगड़ दूँगी!"

"बड़ी आई चुटिया रगड़ने वाली! पहले तेरा दँतौड़ा ही न रगड़ दूँगी जमीन में मैं! सारे मकान का किराया तू ही तो देती है! आज मेरे घर की दीवार में धोती बाँधी, कल को मेरे चूल्हे पर चढ़ बैठियो! ऊपर से आई दहाड़ कर, 'चुटिया रगड़ दूँगी!' अरी मुँहझौंसी, चुटिया रगड़ियो अपनी अम्मा की!"

"अच्छा आ, तुझे अम्माँ बनाऊँ!" कह कर, मास्टरनी झपटी।

उधर से पोस्टमास्टरनी लपकी। तूफान मेल और पंजाब एक्सप्रेस की टक्कर हो गई! बीसियों महिलाएँ अपनी-अपनी छतों पर, छज्जों पर और बहुत-सी-तो छतों-ही-छतों कूद कर उसी छत पर आ उपस्थित हुईं।

किसी ने इसी तरह के मौके को भाँप कर कहा था। 'सौ सुनार की, न एक लुहार की!' मास्टरनी ने अगला-पिछला सारा भगड़ा चुका लिया। उसने पोस्टमास्टरनी के मुँह पर गिन कर ग्यारह तमाचे जड़े, पीठ पर तीन दुहत्थड़ जमाए, सत्रह जगह नोचा, और चुटिया को पकड़ कर पक्की जमीन पर इस तरह रगड़ दिया कि उसके आधे बाल बीच में से साफ हो गए। इसके बाद पोस्टमास्टरनी को सिसकती छोड़ कर उसने अपनी धोती उतारी, और पड़ोसिनों को लाल-लाल आँखों से घूरती हुई अपने किले में आ बिराजी।

पोस्टमास्टरनी ने पहले तो कुछ देर रुदन-राग छेड़ा, फिर कसमें खाईं, कल्पना-कल्पना में ही मास्टर समेत मास्टरनी को जेल भेजा, और अपने बाप-भाइयों से पिटवाया। फिर अपने पोस्टमास्टर से बदला लिवाने की प्रतिज्ञा सकल रमणी-समाज के सम्मुख तीव्र शब्दों में करके, वह भी नीचे आ गई। हाँ, इस युद्ध में उसके दोनों गाल सूज गए, एक भौंह थोड़ी-सी लटक गई, ऊपर का होंठ ज्यादा मोटा हो गया, और सिर पिराने लगा। उसने नीचे आकर हाय-हाय करते हुए चारपाई पकड़ ली।

मास्टरनी थोड़ी देर तक तो विजय के गर्व में घर का काम-काज जल्दी-जल्दी निबटाती रही, मगर जब वह निबट गया, तो पलंग पर लम्बी तान कर सोने की कोशिश करने लगी। पोस्टमास्टरनी की "हाय, हाय" उसके कानों में बराबर आती रही। समझ लिया कि रोकर डरा रही है। मगर फिर ध्यान में पहले अपने शरीर और उसके मजबूत अंगों की तरफ ध्यान गया, और पोस्टमास्टरनी के शरीर से उनके स्पर्श का ध्यान आया, तो उसके अनिवार्य परिणाम की ओर भी कुछ ख्याल गया, और दिल धक-धक करने लगा। सोचा कि भले ही पोस्टमास्टर वृद्ध हों, मगर उनका लड़का मास्टरजी से दुगने शरीर का मालिक है। यही नहीं, मास्टरजी स्वयं इतने शांति-प्रेमी जीव हैं, कि यदि कोई उनके तन का एक सेर मांस ले जाने लगे, तो छटाँक भर अपनी तरफ से दे देंगे। अगर अपनी माँ का बदला पोस्टमास्टरनी के लड़के ने मास्टर जी से लेने का

इरादा कर लिया तो कोई अपनी चमड़ी उधार देने वाला तक न मिलेगा। यहाँ तक भी होता, तो खैर थी। पत्नी के अपराध के पश्चात्ताप में मास्टर जी तीन दिन तक खाना नहीं खायेंगे, और साथ-साथ मास्टरनी को भी उपवास रखना पड़ेगा।

संध्या को मास्टर जी जब लौटते थे, तो उधर-के-उधर ही एक ट्यूशन भी पढ़ा कर आते थे। पोस्टमास्टर का लड़का विक्रमसिंह पहले ही स्कूल से आ गया। उसके आते ही पोस्टमास्टरनी ने रो-रो कर अपना सारा दर्द उसके कानों में उँड़ेल दिया। उससे हल्दी के फोए छौंकवा कर कई जगह बाँधे, और कमर पर 'रुवड़' लिपटवाया। वह तो जूता उतार कर मास्टरनी के घर की तरफ चल पड़ा था, पर पोस्टमास्टरनी ने देखा, और उसे समझाया कि ऐसा करने से स्वयं अपना पक्ष कमजोर हो जाएगा। मास्टरनी को सुनाते हुए उसने हाय-हाय के साथ कहा—"औरत क्या है जाटनी है जाटनी! अरे जब मरद मरद के सामने आयेगा, तो पता चलेगा। भगवान् के दरबार में कोई अंधेर थोड़े ही है।"

लड़के ने निश्चय कर लिया, कि जब तक मास्टर जी से फैसला न हो जायगा, तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करेगा। वह अपनी हॉकी स्टिक लेकर बीच चौक पीढ़ा बिछा कर बैठ गया, और देहलीज के दरवाजे पर निगाह गड़ा दी।

मास्टर जी की आदत थी, कि जब वह संध्या का ट्यूशन पढ़ा कर घर लौटते थे, तो महल्ले के नुक्कड़ पर स्थित पनवाड़ी की दूकान से एक सिगरेट लेकर सुलगाते थे। वह सिगरेट उनके घर पहुँचने तक खत्म हो जाती थी। इस सिगरेट के सहारे वह सुबह से शाम तक की थकान का रंग चेहरे से कुछ समय के लिए उतार देते थे।

आज जब उन्होंने सिगरेट सुलगाई, तो उस पनवाड़ी ने उनसे पूछा—"मास्टर जी, भला घर तो नहीं गए अभी तक सुबह से?"

"ना, भैया," मास्टर जीने सीधे स्वभाव उत्तर दिया—"अभी-अभी तो चला आ रहा हूँ ट्यूशन पढ़ा कर। क्यों, क्या बात है?"

पनवाड़ी ने उनकी शुभाकांक्षा में वह सारा किस्सा नमक-मिर्च लगा सुना दिया, जो यहाँ तक आते-आते और रँग गया था। उस किस्से के अनुसार मास्टरनी ने पोस्टमास्टरनी की नाक काट ली थी, और उसे मार-मार कर अधमरी कर डाला था। फिर उसने यह भी कहा, कि वह या तो घर जाएँ ही नहीं, और अगर जाएँ भी, तो जरा सावधानी से।

एक बार मास्टर जी की तबीयत हुई कि सिगरेट फेंक दें, मगर उसकी उँगलियों तक मस्तिष्क की अंतिम आज्ञा नहीं पहुँची। उस सिगरेट को पीते हुए, वह सामान्य चाल से घर की ओर बढ़े। मगर उन्हें मालूम नहीं हुआ, कि सिगरेट कब खत्म हो गई। उन्होंने उसे तभी फेंका जब वह उँगलियाँ जलाने लगी।

घर में घुसते ही उन्होंने विक्रमसिंह को बीच चौक हॉकी स्टिक लिए तैयार देखा। उसने उनको घूरा। मगर वह सामान्य चाल से भीतर चले गए। एक बार ठिठक कर उन्होंने विक्रमसिंह को इस तरह देखा मानो उस मुद्रा में उसे देख कर आश्चर्य कर रहे हों। फिर भी उसे उठते न देख कर, वह चुपचाप अपने कमरे में घुस गए।

मास्टरनी ने बड़ी सावधानी से उनके हाथ-पैर धुलाए। रोज तौलिया माँगे से देती थी, आज बिना माँगे ही दिया। फिर भोजन की थाली सजा कर सामने ला रखी। आज थाली में एक स्थान पर दो दाल और दो सब्जियाँ थीं। रोटियाँ सदा की अपेक्षा बहुत बारीक और कागजी थीं। मास्टर जी ने बिना कुछ बोले-चाले चुपचाप रोटी की तरफ हाथ बढ़ाया, कि दरवाजे पर आवाज सुनाई पड़ी—"मास्टर जी!"

"कौन? विक्रमसिंह?" मास्टर जी ने कहा—"अंदर आ जा, भाई।"

जब विक्रमसिंह भीतर आ गया, तो वह एक प्रकार से लड़ाई के लिए पूरी तरह तैयार दिखाई पड़ा। मास्टर जी को एकदम सामने देख कर कुछ समय के लिए जो साहस इधर-उधर टहल गया था, उसे फिर

बटोर कर वह मास्टर जी के कमरे में घुसा था। सामने पहुँचते ही वह तीव्र स्वर में बोला—"सुन लिया आप ने सब-कुछ ?"

"अभी-अभी तो आ रहा हूँ, तुम्हारे सामने ही," मास्टर जी ने संतोष के साथ रोटी का टुकड़ा तोड़ते हुए कहा—"कोई खास बात है क्या ?"

"मास्टरनी जी ने अम्मा को इतना मारा, इतना मारा कि उनका सारा शरीर सूजा पड़ा है !" लड़के ने उत्तेजित स्वर में बताया।

"ओह !" मास्टर जी ने कहा—"यह तो बहुत बुरा किया उसने ! "मैं उसे समझा दूँगा।"

"बहुत बुरा किया ! समझा देंगे !" लड़के ने खीझते हुए कहा—"मैं सब जानता हूँ। इसके पीछे आपकी शह है !"

"तब तो तुम्हें अंतर्यामी कहना चाहिए," मास्टर जी ने शांति से कहा।

"सब मालूम हो जाएगा !" लड़के ने धमकी दी—"मैं भी साँप का बच्चा हूँ ! ऐसा वार करूँगा कि आप भी जनम भर याद करेंगे !"

"यह बाद की बात है," मास्टर जी बोले—"अभी तो कुछ नहीं करना है न ? अगर कहो, तो मैं खाना खा लूँ ?"

मास्टर जी की शांत मुद्रा और निर्लेप वाणी से प्रताड़ित होकर, बेचारा सपूत पैर पटकता हुआ वहाँ से चला गया। उसके जाते ही मास्टर जी ने खाने की तरफ फिर हाथ बढ़ाया।

मास्टरनी सहमी-सी एक कोने में खड़ी थी। उसने समझा था कि इसी समय से उपवास आरंभ हो जाएगा। पोस्टमास्टर के लड़के ने जो धमकी दी थी, वह भी उसके दिल में गहरी उतर गई थी। अपने इस एकांत चिंतन से चौंक कर जब उसने ऊपर निगाह की, तो देखा कि मास्टर जी शांत चित्त से खाना खा रहे थे। अवश्य ही उसके मन में अपने पति के प्रति श्रद्धा उमड़ आई होगी।

खा-पी कर जब मास्टर जी लेट गए, तो कुछ नहीं बोले। मास्टरनी

चाहती थी कि कुछ बात चले, तो वह अपनी सफाई पेश करे। मगर बात कैसे चले ? वह सिरहाने आकर खड़ी हो गई, और नाखून कुटकने लगी। फिर साहस करके बोली—"छत पर धोती सुखाई थी।...सामने वाली ने उतार कर फेंक दी। लड़ाई तो उसी ने शुरू की थी।"

मास्टर जी फिर कुछ नहीं बोले, तो उसे और साहस हुआ। उसने आगे कहा—"देखते तो हो। रोज कितना तंग करती है। पैज पर उतरती रहती है। रोज ही तो घंटों नंगे बदन नहाने के लिए बैठे रहते हो। बेटे के बल पर अकड़ रही है। जैसे कहीं का थानेदार हो !"

"थानेदार न हो, चौकीदार ही सही। मेरे तुम्हारे दोनों के लिए काफी है।" मास्टरजी ने कहा—"घर में हल्दी-तेल का इन्तजाम ठीक रखना। ऐसा न हो कि समय पर कमी पड़ जाये।"

"हाय, हाय !" मास्टरनी घबरा कर बोली—"क्या मरा मार ही डालेगा ?"

"मार डालेगा, तो हल्दी-तेल सब बच जायगा। तब आराम से सारे घर में धोती सुखाया करना !"—कहकर मास्टर जी ने करवट ले ली।

मास्टरनी घर के काम-धन्धे में लग गई। और मास्टरजी को शायद नींद आ गई। मगर दस बजे के लगभग उनकी नींद किसी तरह की तेज आवाज सुनकर खुल गई। कान लगाकर सुना। पोस्टमास्टर का स्वर सुनाई पड़ रहा था। शनिवार के दिन वह घर आया करते थे, और सोमवार की सुबह को चले जाते थे।

पोस्टमास्टरनी जोर-जोर से रो रही थी। किन्तु पोस्टमास्टर का स्वर उसके रोने से भी तेज था। पत्नी को धड़ाधड़ पीटते हुए वह चिल्ला रहे थे—"क्यों तू मास्टरनी से पिटी ? तू तो बड़ी थी। बड़प्पन रखती। मेरी नाक काट ली। कहीं का न रक्खा। मास्टर मुझसे ज्यादा पढ़ा-लिखा है। अब मैं उसे क्या मुँह दिखाऊँगा ? वह मेरे जैसे चार को पढ़ाकर पोस्टमास्टर बना दे। क्या मैं जानता नहीं तेरी आदतों को ? रोज-रोज तेरी पैज चलती है। मास्टर और मास्टरनी दोनों को तङ्ग किये रहती

है। तेरे बाप का यह मकान है? जाने किसने बनाया, और कौन ढायेगा। चार दिन को किरायेदार बन गई, तो तेरी जागीर हो गई! कल से तेरी पैंज चली, तो तू नहीं, या मैं नहीं। समझ राखियो! मैं तेरी आदतों को आज से नहीं बीस बरस से जानता हूँ।...तुम औरतों ने लोगों की जेब से पैसा निकलवा कर खाना हँसी-खेल समझ रखा है। जाने कितनों से सलाम-दुआ करके हम लोग रोजी कमाते हैं, और तुम लोग खा-खाकर डकार दूसरों पर छोड़ती हो।"

पोस्टमास्टरनी और भी जोर-जोर से रोती रही। और पोस्टमास्टर साहब घर से निकले भागने को तैयार हो गये। बड़ी कठिनाई से पोस्ट मास्टरनी ने उनके पैर पकड़ कर जाने से रोका, और सुबक-सुबक कर रोना बन्द किया।

मास्टरनी को इस काण्ड से सुख हुआ या दुःख, नहीं कहा जा सकता। पर वह बहुत देर तक जागती रही।

सबेरे मास्टर जी उठे ही थे, कि पोस्टमास्टर साहब की आवाज सुनाई पड़ी—"मैंने कहा, मास्टर जी!...मैं आ जाऊँ?"

मास्टर जी तुरन्त उठकर उन्हें भीतर लिवा लाये, और बोले—"आपको भी पूछने की जरूरत पड़ गई? आपका तो घर ही है।"

"मैं बूढ़ा आदमी ठहरा।" पोस्टमास्टर ने कहा—"बहू-बेटी के घर में पूछकर आने में कोई हर्ज नहीं। काम बहुत जरूरी था, इसीलिए आपको सवेरे ही सबेरे जगाया।"

"हाँ, हाँ, फरमाइये! मैं अपनी शक्ति भर—"

"उस काम में बहुत शक्ति लगाने की जरूरत नहीं।" पोस्टमास्टर ने कहा—"अपनी घरवाली की तरफ से आप से और अपनी इस बेटी से माफी चाहता हूँ। आप विद्या में मुझसे कहीं बड़े हैं। इसलिए—"

"यह आप क्या कह रहे हैं?" मास्टर जी आश्चर्य से पोस्टमास्टर साहब को देखते हुए बोले—"माफी तो मुझे आपसे माँगनी चाहिए। शर्म मुझे अपनी पत्नी पर आनी चाहिए—"

पोस्टमास्टर ने मास्टर जी की पीठ थपथपाई, और हँस कर बोले—"मास्टर जी, सदा वही मनुष्य निर्दोष नहीं होता, जो पिटता है। पीटने वाला भी निर्दोष हो सकता है। आपको इस घर में बड़ी परेशानी रहती है, इतना भी क्या मैं नहीं समझता? ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं। आपको माफी देनी ही होगी।"

"आप जैसे आदमी के पैरों की धूल माथे से लगा सकूँ, तो इतनी शक्ति मिले कि आपको माफ करूँ।" कह कर मास्टर जी ने सचमुच वृद्ध के पैरों पर मत्था टेक दिया। फिर वे बोले—"हम पति-पत्नी के प्रति यदि किसी ने कोई अपराध किया हो, तो मैं उसे क्षमा करता हूँ..."

वृद्ध ने मास्टर जी को छाती से लगाकर कहा—"बेटा, आशीर्वाद देता हूँ, तू जीवन में कभी मार नहीं खायगा।"

उस दिन से उस घर से पैज बिलकुल निकल गई। मगर पोस्ट-मास्टरनी का मुँह बराबर फूला ही रहा। उसकी वह मुद्रा लक्ष्मी-पूजन के दिन तिरोहित हुई। पोस्टमास्टर का प्रण था, कि लक्ष्मी-पूजन तभी होगी, जब पड़ोसी दम्पति उपस्थित होंगे। मास्टरजी तो कहीं बाहर गये थे। वह जरा देर से लौटे, और सीधे पूजा-स्थल पर पहुँच गये। मगर जब मास्टरनी नहीं आई, तो पोस्टमास्टर ने वृद्धा की तरफ तेज नजरों से देखा।

पोस्टमास्टरनी उठी, और मास्टरनी के द्वार के सामने जाकर बोली—"अरी, बस बहुत हुआ। आज के दिन तो गुस्सा मन से निकाल दे। चल जल्दी से। लक्ष्मी आई बैठी है। पूजन नहीं करना है?"

घर से तीर की तरह निकल कर, मास्टरनी ने पोस्टमास्टरनी के पैर छुए, तो वृद्धा की आँखों से आँसू निकल पड़े। गद्गद् कण्ठ से उसने कहा—"दूधों नहाए, पूतों फले!"

उसे उठाने के लिए जब पोस्टमास्टरनी ने उसके कन्धों पर हाथ रखे, तो उनमें हल्का-सा कम्पन था।

हिंग्वष्टक चूर्ण

'मैंने कहा सुनते हो ?'

"दोनों कान मुस्तैद हैं," हमने जोरदार स्वर में सूचित किया।

वह धड़धड़ाती रसोई में से निकल कर बैठक में आ गई।

"मैं कहती हूँ तुम्हें कुछ परवाह भी है! लल्ला के वास्ते हिंगाष्टक चूरन की बारह शीशियाँ भेजनी थीं, सो तो याद नहीं रही होगी ना ?"

"ओह! यह तो मैं बताना भूल ही गया था। देखो, शाम की डाक से ही तुम्हारे दारोगा जी की चिट्ठी आई है। वह कल ही आने वाले हैं। साथ में सलहज साहबा भी होंगी। कल बड़ी दिवाली है ही, मौज रहेगी।"

देवी जी ने एकदम मेरे हाथ से चिट्ठी छीन ली, आँखें और मुँह फाड़ कर पढ़ी, फिर चिट्ठी को छाती से लगा कर नाचते हुए बोली— "तीन साल हो गये देखे हुए। जब भी 'अपने घर' जाती हूँ, मिलता ही नहीं। सरकार ने भी क्या दूरदराज इलाके में ठूँस कर रख दिया! भला बहराइच कोई यहाँ रखा है! रेल में भी चलो, तो दो दिन लग जायें।"

"हमारा ख्याल है कि इस वक्त तो वह वहाँ से चल पड़े होंगे!" हम खूब जानते हैं कि देवी जी के प्रिय विषय पर चर्चा करने से वह कितनी प्रसन्न होती हैं।

"अजी, रेल में बैठ गये होंगे रेल में," देवी जी दाँत चमकाती हुई बोलीं।

"कहीं ऐसा न हो कि उनके स्टेशन पहुँचने से पहले ही रेल छूट गई हो!" हमने आशङ्का प्रकट की।

"बस, छूट गई रेल—तुमने कह दिया! मैं कहती हूँ वह दरोगाई करता है, कोई मजाक नहीं करता। सत्तर आदमी हुक्म में रहते हैं। रेल को भी रुकवा कर खड़ी कर दी होगी।"

"वैसे डेढ़ तोले का तो सारा आदमी है, बेंत की तरह शरीर काँपता है। क्या हुक्म चलाता होगा सत्तर आदमियों पर !"

"तीन साल पहले की बात कहते हो। हुक्म चलाने से खून बढ़ता है। अब तुम्हीं अपने को देख लो ना !"

"देखो, मुझे नजर न लगाओ, मैं तो तुम्हारा जिस्म देख-देखकर बढ़ा जा रहा हूँ, वरना मोटापा और मैं, कभी सात जन्म में भी इकट्ठे न हों।"

"हाय, हाय ! मेरे मोटापे को बखान रहे हो !" उनकी आँखें डबडबा आईं "जब तुम बिजली के खम्भे से थे, तब भी तो मैं ही थी, जो सींक की तरह काँपा करती थी। तुम्हें देखकर ही तो मेरा वजन थोड़ा-सा बढ़ गया है।"

"अजी वह भी बढ़ा ही कितना है ! कुल दो मन दस सेर तो है ही। मैं तो कहता हूँ कि अगर तुम थोड़ा-सा वजन अपने भाई साहब को इनायत कर दो, तो बेचारे का कल्याण हो जाए—कुछ दिनों दरोगाई ढङ्ग से चल जाए।"

"बस रहने दो। पहले तुम तो किसी को देकर दिखाओ अपना वजन," देवी जी ने सीधा आक्रमण करते हुए कहा।

"अच्छा, अब इन अप्रिय बातों को जाने दो। मेरे कहने से तो तुम पतली होने से रहीं। अब लिखाओ क्या-क्या सामान आना है दीवाली का ? कल दिवाली के दिन हम नहा दोड़ेंगे, बताए देते हैं।"

"आज तो बस तुम आध-आध पाव खटाई, धनिया, मिरच, थोड़ी-सी सोंठ...और....और मिठाई कल आजाएगी, अ अ अ, हाँ, खील दो रुपये की, खिलौने एक रुपये के, बताशे आठ आने के, और मेरे ख्याल में दीये ढाई-सौ काफी होंगे ?"

"ढाई-सौ तो ज्यादा होंगे," हम ने कहा।

"तुम रहे बिलकुल भोंदू के भोंदू ही !" वह बोलीं—"अरे, भौजाई आ रही है—कहेगी कैसे कंगाल आदमी हैं ! मैं तो जानूँ दीये तीन सौ

से कम न लाना और जरूरत पड़ेगी, सो बाद में मँगा लेंगे। तारीफ तो इसमें है कि मैं और भौजाई दोनों मिल कर जब तक आखिरी दो दीये जलायें, तब तक पहलों का तेल खत्म हो जाए—समझे कुछ ?''

"आई अण्डरस्टैण्ड वैरी ईजिली, यू नो (तुम जानती ही हो कि मैं बहुत जल्दी समझ जाता हूँ)'' हमने कहा।

"बस, जब तुमसे बात नहीं बन पड़ती, तो तुम अँगरेजी में बोलने लगते हो।'' और यह कह कर वह ठुनक कर चली गईं। लेकिन फिर तुरन्त ही दौड़ी हुई आईं, लौट कर बोलीं—'देखो, लल्ला कमजोर बहुत है। कुछ खाया-पिया उससे जायेगा नहीं। पक्का खाना तो वह जहर समझता है। मेरे ख्याल में तो उसके लिए थोड़ी-सी सब्जी लेते आना। रात ही रात में खराब तो हो जाने से रही।''

हमने आज्ञाकारी पति की भाँति सिर हिलाया और थैले कन्धे पर लटका कर साइकिल सँभाली।

रात भर दारोगा जी और उनकी चहेती पत्नी की चर्चा चलती रही। हमें हिदायत दी गई—"देखो, उसके साथ बातचीत बहुत कम करना, तुम्हें आदत है कि जब बातों में लगा लेते हो, तो इसका ख्याल नहीं रखते कि दूसरा आदमी बात करते-करते हाँफा जा रहा है, और खाना खाते समय जरा हाथ रोक कर खाना, तुम्हारा स्वभाव है कि थाली सामने आई नहीं कि मेहमान खाना-पीना भूलकर बस तुम्हें ही देखता रह जाता है...।''

सब बातों को हृदयङ्गम करके हम सो गये क्योंकि महत्वपूर्ण बातों को स्मरण रखने के लिए उन्हें ग्रहण करने के तुरन्त बाद सो जाना बहुत लाभदायक माना जाता है। देवी जी ने छोटी दिवाली के दीये जलाये।

नींद में मुख्य द्वार की साँकल जोर-जोर से बजने की आवाज आई और हम तुरन्त उठ बैठे। टार्च हाथ में लेकर छज्जे पर आये उसकी रोशनी नीचे डाली, तो एक ताँगा अपने दरवाजे के बाहर खड़ा देखा।

आगे-पीछे मोटा-मोटा सामान लदा हुआ था। हमने तुरन्त देवी जी को जगाया—"लो, तुम्हारे भाईजान आ गये।"

"सच !" वह एकदम उछलीं और हम दोनों गदाक् से नीचे पहुँच गए। सलहज को कन्धे से लगाकर वह उसे इस तरह ऊपर ले गई, मानो सबसे ज्यादा मुश्किल उसे ही ले जाना था। हमने ताँगे के आगे वाले हिस्से में रखे हुए खाकी बिस्तरबन्द पर ज़ोर से हाथ मार कर गुस्से में उठाना चाहा कि वह बिस्तरा एकदम चिल्लाया—"हाय ! जीजा जी, मार डाला।"

ऐं ! हम कुछ नहीं समझे, दूर पर लगे खम्भे की रोशनी में हमने बिस्तरबन्द और उसके ऊपर लगी चमड़े की पेटी को फिर गौर से देखा, तो हमें अनुभव हुआ कि जिसे हम बिस्तरबन्द समझ बैठे थे, वह और कोई नहीं, एक मानव आकृति थी. फिर भी हमने टार्च का प्रकाश सीधा उस मानव आकृति के ऊपर फेंका और दमभर को रुकते से खड़े रहे।

कष्ट से कराहते हुए उस विशाल तोंदिल मानव आकृति ने ये शब्द बाहर निकाले—"जीजा जी, नमस्ते ! आपने तो आते ही वार कर दिया हयँ।"

हयँ ! यह तो सचमुच दारोगा जी थे, हमारे साले साहब थे, और हमारी देवी जी के भाई साहब थे। मगर, हे गेरे देवताओं ! उनकी शक्ल, चेहरा-मोहरा, तन-बदन की आकृति, हड्डियाँ, गड्ढे, आँखें इत्यादि सभी मानस को चीन्हने वाली वस्तुएँ चर्बी की छः इंच मोटी परतों के पीछे गायब हो गई थीं।

ताँगे वाले ने कहा—"अब उतरिहौ हजूर, हम का लौटि फेरि टेसन पहुँचिके को रहिब।"

"ओह !" साले साहब ने कहा—"जरा मदद कीजिये, जीजा जी !"

"ऐं !...हाँ, हाँ !" कहकर हमने फिर उनकी खाकी वर्दी के ऊपर लगी बगलस पर हाथ डाला, तो वह बोले—"नहीं, नहीं, मुझे नहीं। जरा

सामान को उतारने में मदद कीजिये, मैं तो उतर ही जाऊँगा, आखिर दारोगा हूँ, कोई हँसी-दिल्लगी नहीं।"

सामान इत्यादि जब ऊपर पहुँच गया, तो आगे-आगे हम और पीछे-पीछे जनाब ऊपर की ओर लपके। ऊपर जाकर हम क्या देखते हैं कि हम ही हम ऊपर तक आ पाए हैं। जीने में झाँककर देखा, तो फिर वापस लौटना पड़ा। बात यह है कि हमारे जीने का दरवाजा रेल के डिब्बे के दरवाजे से भी जरा तंग है, ऊपर से उसके एक किवाड़ को हम हमेशा सहूलियत के ख्याल से बन्द रखते हैं। एक बंन्द किवाड़ और दूसरे की चौखट के बीच में फँस कर हमारे साले साहब उसकी ऊपरी साँकल खोलने की कोशिश कर रहे थे। हमने लपककर उसकी साँकल खोल दी और इसके साथ ही किवाड़ झोंक देकर खुला। बड़ी मुश्किल से उस झोंक में उन्हें सड़क चूमने से रोका और आखिर मुँह से निकल ही गया—"अरे यार, ऐसा क्या खाने को मिल गया तुम्हें दरोगाई में ?"

दोनों घुटनों पर हाथ रख कर वह हाँफते हुए ऊपर चढ़े और जब सकुशल छत पकड़ ली तो बोले—"अजी जीजा जी, सारी रात जागकर थकान चढ़ गई है. नहीं तो बड़े से बड़ा डाकू मेरे मुकाबले में नहीं दौड़ सकता—अब आप देख लीजिये कि वह अपनी जान बचाने को दौड़ता है, और मैं अपनी नौकरी-कितना फर्क है। मगर हकीकत है।"

श्रीमती जी पास ही मौजूद थीं मय सलहज साहबा के। इसलिये हमने कहा—"इसमें क्या शक है, यह तो जाहिर ही है ! आखिर वर्दी किस चीज की पहने हो !"

साले साहब का चेहरा भावशून्य रहा। जब वह भीतर पहुँचे, तो बिजली की रोशनी में उनकी जीजी ने उन्हें अच्छी तरह से देखा और अत्यन्त प्रसन्न होते हुए वह बोलीं, "लल्ला, अब तो कुछ गदरा गया है !"

"यों ही थोड़ा-सा", साले साहब ने उत्तर दिया—"जीजी सब तुम्हारे

हिंग्वष्टक चूर्ण की करामात है। भगवान् कसम इतना स्वाद लगता है कि आधी शीशी रोज निपटा देता हूँ, तभी तो महीने-दर-महीने तुम्हें एक दर्जन शीशियाँ भेजने की तकलीफ देता हूँ। बड़ी नायाब चीज है। जिस दिन से खाना शुरू किया है, बस बदन में ताकत आती चली गई। मैं ही इतना हजम कर जाता हूँ। वरना एक बार एक कैदी को इसलिये दे दिया था कि बेचारे को हवालात का खाना-पीना हजम हो जाये —बस, क्या पूछती हो! रात भर कोतवाली की बैठक तक बदबू आती रही। सुबह को हम लोगों ने उस कैदी को हवालात की कोठरी में चारों तरफ ढूँढा। पहले तो ख्याल हुआ कि कहीं दरवाजे के सीखचों में से न निकल गया हो। मगर वह तो भगवान् की खैर समझो कि एक कोने से चिपका मिल गया और नौकरी बच गई।......खैर छोड़ो इन बातों को, अब यह बताओ कि कुछ खाने-पीने को रखा है या नहीं?"

हम ऊपर से हँस नहीं पा रहे थे, मगर भीतर ही भीतर आँतें ऊपर को उछल रही थीं जिसकी वजह से बहुत सख्त भूख लग आई थी। मगर हमें मालूम था कि घर में हमारी लाई हुई दो सेर सब्जी के अलावा साले साहब की मिजाजपुर्सी के लिए और कुछ नहीं था।

देवी जी ने कहा—"हाँ, हाँ, रखा क्यों नहीं है? सेब हैं, नाग हैं, अमरूद हैं, और...।"

सलहज साहब ने कहा—"और मैं भी घर से दो सेर बेसन के लड्डू बनाकर चली थी। अभी निकालती हूँ।"

साले साहब ने कहा—"खैर, फिलहाल इतने से काम चल जायगा।"

हमने हँसकर कहा—"बस, दो सेर लड्डू और दो सेर सब्जी काफी होगी?" हम समझते थे कि लगे हाथों यह मजाक खप जायगी, मगर देवी जी ने हमारी तरफ आँखें तरेर कर देखा और हम 'सन्फोराइज्ड' हो गये।

देवी जी सलहज से बातें करने में मशगूल हो गईं, और हम अपने बिस्तरे पर इस आशा में लमलेट हो गये कि निश्चित रूप से साले साहब

खाते समय हमें याद करेंगे और हम अनजान की तरह आश्चर्य प्रकट करते हुए तुरन्त उछलकर बिस्तरे से बाहर हो जायेंगे। बहुत होगा एक-दो बार ना—नुकर कर लेंगे।

मगर जनाब पुलिस वालों की आँखों में शर्म कहाँ! देवी जी सब्जी तराशने लगीं और सलहज साहबा बिस्तरा खोलने लगीं। बिस्तर का बन्द खोलते हुए वह बोलीं—"मैं तो जानूँ अब आकर कहीं आदमी दिखाई दिये हैं। वहाँ यह तो रहते हैं रात-दिन घोड़े की पीठ पर और मुझे सिर्फ पूरब के देहाती लोगों से वास्ता पड़ता है। छह महीने तक तो उनकी गिटर-पिटर मेरी समझ में ही नहीं आई...।"

हमने सलहज साहबा की बात को बीच में ही टोकते हुए साले साहब से पूछा—"घोड़ा! क्या आपने घोड़ा रखा है?"

सेब की दो फाँकें मुँह में रखकर उन्होंने दो बार मुँह चलाया और मुँह दूसरी दो फाँकों के लिये खाली करते हुए बोले—"जनाब, घोड़ा भी कम्बख्त देसी नहीं, अरबी है। सरकार की तरफ से गश्त के लिये मिला हुआ है और अब तक दसियों घुड़सवारों को पटक चुका है, मगर मेरे नीचे गाय की तरह चलता है। कहते थे इलाके में गणपत डाकू का घोड़ा सबसे ज्यादा भगोड़ा है। मगर उसके पीछे जो सरकारी घोड़ा दौड़ा है, तो जीजा जी! गणपत डाकू को साफ गर्दन से पकड़कर उठा लिया मैंने...!" और यह कह कर उन्होंने सब्जी की थाली में बची शेष दोनों फाँकों को बत्तीसी के रास्ते भीतर पहुँचा दिया।

जब लड्डुओं का बोहिया आधा निबट गया, तो साले साहब कुछ उचके। शायद सलहज साहबा ने कुहनी मारी थी। आदमी अकलमन्द हैं, इसलिये समझ गये और बोहिये पर निगाहें जमाये-जमाये बोले—"बस, भई! अब कम-से-कम सुबह तक के लिये सहारा हो गया। हमारा बिस्तरा बिछाओ। साढ़े पाँच तो बज ही गये हैं। एक-दो घण्टे की नींद सो लें, तो तबियत जरा हल्की हो।"

देवी जी ने कहा—"हाँ, लल्ला, सोजा ! इतनी दूर की मंजिल करी है, थकान तो आखिर चढ़ ही जाती है।"

सलहज साहबा ने देवी जी के बिछाये पलङ्ग पर उनका बिस्तरा खोल दिया। उन्होंने अपने लम्बे-चौड़े सूटकेस को चूहे की तरह पकड़ कर उठाया और पलङ्ग पर बैठ कर उसे चाबी से खोला। फिर उसके भीतर से वही हिंग्वष्टक चूर्ण की शीशी निकाली, अपनी चौड़ी हथेली पर उसे आधी खाली की, एक फँका फट की-सी आवाज के साथ लगाया और ऊपर से गिलास खाली कर दिया। फिर स्वाद से मुँह चलाते हुए बोले, "जीजा जी, बहुत नायाब चीज बनाई है आप के वैद्य जी ने ! चाहे जितना खा लो, मगर जरा-सी चुटकी खाने को पानी बना देती है। मैं अगर सरकार के रिसर्च विभाग में होता, तो भगवान् कसम, इस वैद्य को प्राइज दिलवा देता। जी तो चाहता है इस वैद्य को अपने साथ ही लेता जाऊँ...!"

हम जल्दी से उठ कर चप्पल पहनने लगे। वह बोले, "कहाँ को चले ?"

हम ने कहा, "जरा वैद्य जी को खबर कर आऊँ कि बहराइच का दारोगा तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहता है। इसलिए दो घण्टे के भीतर-भीतर फरार हो जाओ।"

इस पर साले साहब ने इतने जोर का ठहाका लगाया कि...कि पड़ोसी महिला की आवाज आई—"मरे सोने भी नहीं देते...! रात को जाने क्या महफिल-सी जमाए रखते हैं !"

"अब तुम सो जाओ ! जी," सलहज साहबा नखरे से बोलीं—"इतना तो ध्यान रखो कि यह कोई थाना नहीं है, भले आदमियों का घर है।"

"साले साहब उनकी ओर उंगली हिलाते हुए बोले, "यह बात तुम ने ठीक कही, काफी समझदार हो गई हो ! लो, यह सूटकेस बंद करो और सब सो जाओ। नहीं तो मुझे नींद न आएगी।"

"यह तो ठीक है," सलहज साहबा हम सब लोगों को सावधान करते

हुए बोलीं, "जब तक ये सो नहीं जाते, तब तक किसी को...मेरा मतलब है जब तक सो नहीं जाते, तब तक इन को नींद नहीं आती!"

सोने के मामले में सलहज साहबा की यह गड़बड़ाहट सुन कर हम सब लोग खूब हँसे। मगर कुछ ही देर बाद उस गड़बड़ाहट का मतलब समझ में आ गया। अभी वातावरण शांत हुआ ही था कि दारोगा जी की दुनाली चलने लगी, फिर थोड़ी गरगराहट होनी आरंभ हुई, इस के बाद मानो किसी देसी मिल के भोंपू बजने आरंभ हो गये हों, जैसे रेल के गार्ड की सीटी का सुर निकाल कर उसे मशीन के जोर से बजाया जा रहा हो!

राम-राम कर के हम उठ बैठे। देखा देवी जी भी कुनमुना रही थीं। हाँ, सलहज साहबा अलबत्ता घोड़े बेच रही थीं।

हम ने कहा, "अब उठो भी। छह तो बज गए। दीवाली का भोजन तैयार करना है कि नहीं?"

कहते ही देवी जी उठ बैठीं। फिर हमारी तरफ देखा कि हम इस बात को उन्हें सीधे स्वभाव समझा रहे हैं या उनके भाई साहब का मजाक उड़ा रहे हैं। हमने तुरन्त पलंग छोड़ दिया और अपनी चिरपरिचित कुरसी पर आ डटे।

हमने हजामत बनाई, नहाए-धोए और इतनी देर रसोई से आती सुगन्ध का आनन्द उठाते रहे। एक-दो बार दारोगा जी को पुकार कर जगाने की कोशिश की। दो-चार आवाजों में उधर तो असर पड़ा नहीं, इधर देवी जी झल्ला पड़ीं—"क्यों चिल्ला रहे हो फजूल में? अरे, रात भर के हारे-थके हैं, दो घड़ी सोने क्यों नहीं देते मेहमानों को?"

हमने कहा, "तो, बाबा, पहले हमें भोग लगा कर छुट्टी दो ना।"

"ओहो! तुम तो, राम कसम, दिन पर दिन पेटू होते जा रहे हो। तभी तो तोंद कहीं की कहीं जाने की तैयारी कर रही है! तुम से नहीं रहा जाता, तो दो घड़ी बाजार हो आओ न! तब तक वे दोनों उठ जाएँगे और नहा-धो कर निबट लेंगे।"

यह बात अपने राम की समझ में आ गई। जेब में एहतियात के ख्याल से दो-चार रुपये डाले, एक कहानी-संग्रह उठाया और हम चल दिए अपने परम मित्र बाबू लाडली प्रसाद श्रीवास्तव के यहाँ। वहाँ पहुँच कर शतरंज जम गई और शतरंज जब जम जाती है, तो सब कोई जानते हैं, संसार की घड़ियाँ तेजी के साथ दौड़ने लगती हैं।

खैर, जब हम तीन बजे के लगभग घर पहुँचे, तो मन ही मन उन बहानों को सोचने लगे, जिन के सहारे देवी के आलाप का उत्तर दिया जाएगा। ऊपर पहुँचने पर देखा कि साले साहब ने रात की पूरी शीशी का बचा हुआ भाग हाथ पर उलट रखा था और ठहाका लगाते हुए कह रहे थे —

"जीजी, जब से यह कम्बख्त दरोगाई मिली है, ऊपर की आमदनी तो हरामजादी रह ही नहीं गई है। यह बात नहीं कि कोई हाथ पकड़े बैठा रहता है, बल्कि लोग ही, हुकुम के पिल्ले, आँख दिखाने लगे हैं! केस मिलते हैं साले डकैती के, जिनमें कुछ बचने-बचाने की गुञ्जाइश ही नहीं, फिकर के मारे आधी जान सूख जाती है, सो अलग! मैंने तो बस यों समझो कि आज थोड़ा-सा मन भर के खाया है, नहीं तो...!"

"नहीं तो मैं तो तुम्हें जानो खाना बनाकर ही नहीं देती!" श्रीमती सलहज साहबा ने उन की आँखों से खबर ली।

"हा हा हा हा हा!" ठहाका लगाते हुए दारोगा जी ने फिर वही फट् से खुले मुँह पर हाथ मारा और आधी शीशी हिंग्वष्टक चूर्ण उनके उदर में सीधा पहुँच गया। उसी अवस्था में वह मेरी ओर देख कर बोले—"अरे, आप आ गए डीडा जी!"

हम ने देवी जी की ओर अपराधी भावना से चोर नजर डाली, तो देखा कि वह बहुत नरमी से वही संकेत कर रही हैं, जो बहुत प्यार से सारे संसार की पत्नियाँ गाहे-बगाहे अमल में लाती हैं। हम इस एकान्त निमंत्रण के पीछे पहुँचे रसोई में, तो वह फुसफुसा कर बोली, "क्यों जी, कहाँ थे? सच-सच बता देना, ज्यादा झक मारने का समय नहीं है!"

हम ने कहा, "बाबू लाड़लीप्रसाद के यहाँ टिक गया था ज़रा।"

उन्होंने कहा, "कुछ खाया-पिया तो नहीं अभी?"

हम ने कहा, "अरे, भला हम तुम से पहले खाते हैं कभी?"

वह बोलीं, 'हँसी छोड़ो, इसी दम बाजार चले जाओ।"

हम बोले, "बाजार से तो आ ही रहे हैं। अब फिर बाजार जाकर क्या करेंगे?"

वह मुस्कुराईं—"सामान ले आओ थोड़ा सा। बेसन, घी, मैदा, बूरा, खटाई—और बाकी तो सब है...।"

हम चहके—"बाकी तो सब है! क्या मतलब? और इस बाकी का जो बाकी था वह सब कहाँ गया?"

उन्होंने आँखें दिखाईं "अब यह तुम्हारे किस्से-कहानियों की बहस नहीं है। जा कर चुपचाप सब सामान ले आओ।"

हम कुछ नहीं समझे। फिर से आज्ञाकारी पति बन गए। सब थैले उठाकर कन्धे पर डाले और नीचे वाली दहलीज की राह खिसक गए।

रास्ते में मिल गए वैद्य जी। बोले—"अरे भई, सुनो तो। वह हमारा हिंग्वष्टक चूर्ण तो ठीक काम कर रहा है न? इस महीने तुमने शीशियाँ नहीं मँगवाईं? हर महीने की तरह मैंने तो पैक करके रख दी हैं, भाई! अब तुम जानो तुम्हारा काम जाने।"

हमने रुककर बहुत विचार पूर्वक वैद्य जी से पूछा— "भला वैद्य जी महाराज, आपने इस चूर्ण का विज्ञापन तो कहीं नहीं दे रखा है?"

"नहीं तो...क्यों?" वह चकराकर बोले।

हमने फिर पूछा—"अच्छा, यह जो शीशियाँ हम आप से खरीदते थे, इन्हें कहाँ भेजते थे इसके बारे में भूल से हमारी जबान से आपके सामने कुछ निकल तो नहीं गया कभी?"

"अरे, यह तो मैंने तुमसे कई बार पूछा।" वैद्य जी बोले– "मगर तुम अपने सिर की जहमत टालना चाहो तब न! नहीं तो मैं ही न सीधी

वी० पी० करके भेज दिया करता हर महीने...अब बता दो कहाँ भेजते थे ?"

हमने जल्दी-जल्दी कदम आगे बढ़ाते हुए कहा—"वैद्य जी, आपके चूरन को सौ-सौ नमस्कार ! इसे खाने वाला तो मजे से खा जाता है, पर भेजने वाला हजम नहीं कर पाता। अब आप पैकिट को खोलकर बेच दीजिये। हमारी खरीदारी खतम।"

वैद्य जी कुछ नहीं समझे। हमें कन्वेस करने के लिये वह 'सुनो-सुनो तो' करते रहे, मगर बुढ़ापे की वजह से दौड़ा उनसे नहीं गया। हमारे पग जरा लम्बे हो गये थे। हम जानते थे कि अगर इसी रास्ते से वापस आये, तो वैद्यजी कुशल दूकानदार हैं, यहीं टहलते हुए मिलेंगे क्योंकि घर वह हमारा जानते नहीं। इसलिये हम रास्ते का चक्कर काटकर बहुत देर में घर पहुँचे। रसोई में सामान रखकर और देवी जी को उस पर जुटता देखकर हम, हाथ-मुँह धो बैठक में आये। हमें देखते ही साले साहब बोले—

"आप तो न जाने कहाँ-कहाँ सैर करते फिरते हैं, जीजा जी ! अरे, हम भला कब कब दर्शन कर पाते हैं आपके ! बैठो जी अब, कहीं जाने की जरूरत नहीं। अब इस एक हफ्ते की छुट्टी में हम आपको कहीं इतनी देर के लिये नहीं जाने देंगे। बस, यहीं शतरंज जमेगी।"

एक हफ्ते की छुट्टी ! हमारा ऊपर का दम ऊपर और नीचे का नीचे हो रहा था। फिकर खाने पीने के सामान की नहीं थी, साले साहब की उस बेतकल्लुफी से थी, जो उन्हीं के लिए हानिकारक हो सकती थी। हम यह सोच ही रहे थे कि यह हफ्ता कैसे कटेगा कि वह बोले—

"अरे हाँ, यह तो कहना भूल ही गया था ! मैंने लिखा न था आपको वहाँ से कि एक दर्जन शीशियाँ और भेज दें। फिर मैंने लिख दिया कि फजूल मत भेजना, मैं आ ही रहा हूँ। खैर, वह तो बहुत समझो कि अक्टूबर का राशन आज दो नवम्बर तक चल गया। मगर अब उन्हें लाने के लिए तो आपको बाजार जाना ही पड़ेगा।"

हमने दबी जबान से कहा, "ओह ! बड़ा अफसोस है !"

"क्यों, क्या बात है ?" वह चहके ।

"बात यह है कि जिन वैद्य जी से आपके हाजमे का यह राशन मिलता था न, उनका देहांत हो गया है ।"

"देहांत हो गया है !...यानी आपका मतलब है इंतकाल ही हो गया है ?" वह सहमे-सहमे से बोले ।

"हाँ, बस यही समझिये । देह का अंत हो जाने पर आत्मा के निवास करने का कोई सुभीता ही नहीं है, और आदमी तो आप जानते हैं, एक ख्याल है, अब है और अब नहीं है ।"

"यह तो आप सही कहते हैं, जीजा जी", वह बोले, "मगर अपनी तो बड़ी मुश्किल हो गई ! हम तो एक कदम भी इसके बिना नहीं चल सकते । कोई और इस तरह का चूर्ण नहीं बनाता ? कम्बख्त कोई डाक्टरी या हिकमत की दवाई माफिक नहीं आई थी, हिंग्वष्टक चूरन और लोगों ने भी बना कर दिए, मगर नहीं चले । वह तो इस चूरन में ही न जाने क्या डाल रखा था उस हरामजादे ने...! मर गया, बहुत जल्दी मर गया !"

"हूँ !" हम ने कहा और मन ही मन वैद्य जी के बुढ़ापे से क्षमा माँगी ।

क्या बताएँ, हमारे साले साहब दो दिन से ज्यादा हमारे यहाँ नहीं ठहर सके । बेचारों का पेट ठिला होता चला गया, भूख कम होती चली गई, फिर एक डाक्टर की तेज-सी दवा ली, तो मरोड़े लग गए, और वे बन्द हुए, तो पेट फिर पत्थर हो गया । दो दिन के भीतर ही पेट, पेट हो गया, सूरत पर मुर्दनी छा गई । देवी जी भी घबराई-घबराई-सी नजर आने लगीं—और आखिर तीसरे दिन सलहज साहबा, देवी जी के गले मिल कर खूब रोती हुई ताँगे में जा बैठीं । साले साहब ने सूखे चेहरे को हम लोगों की तरफ उठाकर हाथ जोड़े । मैंने चलते-चलते सलहज साहबा के कान में कहा, "तुम पागल हो ! कहाँ तुम्हारी यह उमर

और कहाँ इसका यह मोटापा ! वैद्य मरा नहीं है, मगर खबरदार, जो कानोंकान भी खबर हो पाए इसे ! अपना भला चाहती हो, तो अपने हाथ का, खालिस दूध तरकारी का भोजन दो और कमजोर होने की परवा न करो, नहीं तो दिन और रात दोनों रोते काटा करोगी। बस, समझ जाओ !"

सलहज साहबा के मुँह पर चिंता के बादल छा गए। मगर औरत समझदार थी। तीन महीने तक उनकी कोई खबर नहीं मिली। फिर एक दिन सलहज की चिट्ठी आई अपनी ननद के नाम। बहुत-सी बातों के बाद यह भी लिखा था—"...और अब वह सचमुच खूब दौड़ते हैं और पहले जो थोड़ा काम नहीं आता था, उसे अब थका देते हैं ! ननदोई जी से कहना उन्होंने जो नुस्खा बताया था उसके लिए मैं उनका एहसान जन्म-भर नहीं भूलूँगी।"

होली का रोमांस

रोमांस के बीज तो बहुत समय पहले से पड़ गए थे, यों समझिए कि जब रामभरोसे लाल की पत्नी उन्हें छः महीने के लिए विधुर बना कर अपने मैके को प्रस्थान कर गईं, तो रामभरोसेलाल को अपने मकान की उस स्थिति का लाभ उठाने का ध्यान आया, जिसके आधार पर रोमांस बिना खौफ-व-खतर चल सकता था।

चाहे रामभरोसेलाल कद के नाटे रहे हों, मगर उन्हें अपने आंगन में पड़ोसिन की एक मंजिल ऊँची छत पर कपड़े सुखाती हुई महिलाओं के दर्शन हो जाते थे। मकान ही इस तरह का बना हुआ था। आंगन खूब चौड़ा था, दिक्कत एक पेश आती थी। उनकी मैके सिधारी पत्नी सारे गुड़ का लीप पोत कर गोबर बना गईं थी।

औरतों की यह बहुत बुरी आदत है कि जहाँ रहेंगी पड़ोसिन की तरफ कानी आंख जरूर रखेंगी। रामभरोसेलाल की श्रीमती जी भी अपवाद नहीं थीं। भंगिन से बातें करेंगी तो, नाइन से बतियाएंगी तो पड़ोसिन पर टाल-टालकर चार बातें जब तक नहीं सुना लेंगी, तब तक खाना पेट में नहीं पचेगा। दो चार बार हाथ हिला हिला कर कोसा भी गया था और पड़ोसिन थी कि कुछ बोलती चालती ही नहीं थी। बेचारी विधवा बोले भी तो कहाँ तक! विधवा भी आज की नहीं थी, नौ साल हुए पड़ोसी बाबू स्वर्ग सिधार चुके थे।

रामभरोसे लाल को सूझा कि अब मैदान साफ है। पड़ोसिन से रोमांस न लड़ाया, तो जनम अकारथ गया। सही भी है, आस-पास पड़ोस में चार जने मुहब्बत करने वाले न हों तो जिंदगी का लुत्फ नहीं। वह खूब जानते थे कि पड़ोसिन की हर महीने कहीं से मनीआर्डर आता है। घर में वह स्वयं रहती है, बूढ़ी और अन्धी सास रहती है, एक

पंद्रह बरस का देवर रहता है जो कालिज में फर्स्ट इयर में पढ़ता है और एक तरह से बुद्धू है। उन्हें इस बात का पूरा यकीन था कि अगर पड़ोसिन उनकी पत्नी से जबान लड़ाने से गरेज करती है, तो यह सिर्फ इस वजह से कि रामभरोसे लाल का वह लिहाज करती है। यों उनका रंग कुछ विशेष काला भी नहीं है। दाग भी चेहरे पर चेचक के हैं जरूर मगर बहुत ज्यादा नहीं। नाक नक्श यद्यपि ऐसे नहीं कि महिलाओं को आकर्षित कर सकें, मगर फिर भी काम चलाऊ तो हैं ही। फिर पड़ोसिन भी कोई ऐसी हूर की परी नहीं। रोमांस के लिए खेत तैयार है।

सो पत्नी के मैके जाते ही रामभरोसे लाल ने एक दिन रात भर सपने देखे और आधी रात को बिस्तरे पर बैठ कर, गोद में तकिया और तकिए पर कुहनी रखकर सोचने लगे। नया अनुभव होने जा रहा है। उमर चालीसवें को चूम रही है, दिल में धकधकी भी है और परसों को होली है। वाह, वाह! इससे अच्छा सुयोग और क्या होगा? जो रोमांस होली में फलता है, वह सारी जिन्दगी फूलता है। मगर रोमांस के लिए यह एक प्रारंभिक गुर है कि दोनों पक्षों में किसी तरह का आदान-प्रदान हो, कोई चीज इधर से जाए, कोई चीज उधर से आए, पहले इन चीजों का रूप भौतिक हो, बाद में वही भावनाओं में बदल जाए।

बहुत सोच-समझकर रामभरोसे लाल ने एक चिट्ठी लिखी।

"प्यारी पड़ोसिन,

"सबसे पहले मैं अपनी मनहूस घरवाली की तरफ से बार-बार हाथ जोड़ कर माफी का ख्वाहिस्तगार हूँ। उसे यह बिलकुल भी तमीज नहीं कि किससे लड़ना चाहिए, किससे नहीं। वह तो जब से गौनियाई आई थी तभी से लड़ती चली आई है। अगर तुम्हारे दिल में उसकी तरफ से कुछ खार हो, तो उसे मेरी पत्नी समझ कर माफ कर देना......

"हम और तुम एक अरसे से बराबर-बराबर इस मकान में रहते चले आए हैं, मैंने सैकड़ों बार तुम्हें कपड़े सुखाते देखा और तुमने भी मुझे जरूर दातुन-कुल्ली करते, बाल काढ़ते या हलवा खाते देखा होगा।

सच कहना, क्या तुम्हारे दिल में कभी इस बात का ख्याल नहीं आया कि यह कौन मरदूद बार-बार मेरी तरफ देखता है ? क्या कभी तुम्हें मुझ पर गुस्सा नहीं आया होगा ? फिर जब तुम गुस्सा करते-करते थक गई होगी तो थोड़ा सा कुतूहल हुआ होगा, फिर वह कुतूहल बेचैनी में बदल गया होगा...अब कहते शरम आती है ..मगर वह बेचैनी असल में प्रेम का दूसरा नाम है ।

"तुम्हें किसी चीज की दरकार हो तो एकदम लिख देना, जान हथेली पर रख कर हाजिर करूँगा, बस, एक बार मेहर की नजर इस तरफ डाल लिया करना ।

—तुम्हारा

"रामभरोसेलाल"

चिट्‌ठी लिख कर रामभरोसे लाल ने उसके भीतर दो पैसे का गुलाल रखा । ऊपर लाल तागे से उसे इस तरह बांधा, जैसे लगन भेजा जा रहा हो । फिर होली के दिन सुबह ही सुबह उसे एक ही झपाटे में उस समय बराबर की छत पर फेंक दिया, जब पड़ोसन केश बिखराए अलगनी पर देवर के कपड़े सुखा रही थी । पास में कोई चीज आकर पड़ी है यह तो उसने आवाज से ही समझ लिया । फिर इधर-उधर देख कर उसे उठा भी लिया । उस समय तो रामभरोसे लाल की तबीयत खुश हो गई, जब उसने पुड़िया खोली और धोखे में गुलाल उसकी सफेद झक्क धोती को रंगता हुआ बिखर पड़ा । उसने चिट्ठी को इधर उधर से पलट कर देखा एक बार रामभरोसे लाल की तरफ देख कर मुँह बिचकाया और चिट्ठी को लिए-दिए वह जीने की तरफ चली गई ।

अब रामभरोसे लाल की तबीयत में धुकड़-पुकड़ होने लगी । यह क्या बेवकूफी का काम कर डाला उसने । अगर कहीं उसने चिट्ठी अपनी सास को पढ़ कर सुना दी, या उसके देवर के हाथ लग गई, तो वह बेभाव की पड़ेगी कि मकान छोड़ कर मुहल्ले से भागते ही, बन पड़ेगा । इतना ही हो जाए तो गनीमत । अगर कहीं महल्लेवालों ने जूतों का

इस्तेमाल शुरू कर दिया, तो चालीसवें साल में ही सिर गंजा हो जायगा। औरतों का कुछ बनता नहीं। लोगों की सूक्ष्म भावनाओं का ख्याल तो इन्हें होता ही नहीं। उन्होंने खुद अपनी पत्नी को लोगों के रोमांटिक ख्यालातों का मजाक उड़ाते सुना था। वह मजे ले-लेकर बताया करती थी कि अमुक मेले की भीड़ में जब कोई मनचला उसके साथ बेहूदा मजाक करने की कोशिश करता, तो मूर्ख स्त्रियों की तरह चिल्ला कर, जगहँसाई को न्यौता न देकर वह किस प्रकार अपनी ताकतवर कुहनी का ठेका उस मनचले के पेट में जोर से दे कर आगे बढ़ गई थी किस प्रकार वह मनचला सड़क के किनारे बैठ कर कराहता नजर आया था। रोमांस... राम भजो, भला इन औरतों को रोमांस का क्या पता! अब क्या होगा?

सोचते-सोचते रामभरोसे लाल ने घंटे भर में डेढ़ सेर पानी पिया और भोजन करने के लिए ढाबे में जाने का विचार त्याग दिया। माथा गरम, बदन नरम, पैर ठंढे हो गए। बार-बार निगाह ऊपर जाती और पड़ोसिन की छत को खाली देख कर लौट आती।

दोपहर के समय जीने के दरवाजे पर खटखट हुई, "रामभरोसे लाल जी, अजी रामभरोसे जी।"

रामभरोसे लाल ने एक हाथ से दिल को थामा, बिस्तरा त्याग कर जीने की तरफ लपके। दरवाजा खोला, और मुँह तथा आँखें फाड़कर इस तरह पीछे हटे, जैसे कोई भूत नजर आ गया हो। यद्यपि वह भूत नहीं था, पड़ोसिन का देवर था। कम्बख्त ने चुस्त पाजामा और कुरता पहन रखा था, जो लड़ने के लिए बहुत उपयुक्त पोशाक होती है।

"क्या बात है?" रामभरोसे लाल की मरी सी, ना मालूम आवाज निकली।

पड़ोसिन के देवर ने हाथ पीछे कर रखे थे। भीतर घुसते ही उसने एकदम हथेलियाँ आगे कर के रामभरोसेलाल का मुँह भलीभाँति पोत दिया। फिर 'ही ही' करते हुए जोर से बोला, "होली है! होली है!"

रामभरोसे लाल को यह विपत्ति सहन करके बहुत संतोष हुआ। वह भी भागे-भागे गए, थोड़ा-सा गुलाल आले में रखा था। वहीं से लेकर छोकरे के मुँह पर मल दिया और एक लम्बी साँस छोड़ कर बोले, "होली है !"

लड़का होली खेल कर चला गया तो उनकी जान में जान आई। इसके माने थे कि बेल मंडेरे चढ़ गई और चिट्ठी जो थी सो पच गई। रोमांस की अच्छी फसल के लिए यह कितना जरूरी है कि जमीन बीज पकड़ ले।

अब जाकर उन्होंने शीशे में मुँह देखा, तो थोड़ी-सी खीझ आई। वह रावण के वंशज नजर आ रहे थे। जो रंग उनके मुँह पर मला गया था। उसमें कुछ विशेष वस्तुओं का मिश्रण था, उदाहरण के लिए—कोलतार, सुनहरी मिरगान, सिमरक, तारपीन का तेल, तवे की स्याही, जामनी रँग और गोमाता का त्यागा हुआ पदार्थ।

अब रामभरोसे लाल साबुन और पानी लेकर मुँह का रंग छुड़ाने बैठे। गिन कर सात बार साबुन मला और पानी से रगड़-रगड़ कर मुँह धोया। मगर रंग नहीं छूटा। आँखें उसी तरह अन्धकार में से प्रकाश की दो बत्तियों की तरह चमकती रहीं। होली वह अवश्य खेलते, मगर ये कपड़े तो अभी नए-नए सिलवाए थे। उस पर जो रग उनके मुँह पर मला गया था वह कपड़ों से अच्छी तरह पोंछ भी दिया गया था।

अभी वह मुँह धोकर उठे ही थे कि सहसा ही एक टोकरा गन्दे नाले में से एकत्र कर के लाया हुआ पदार्थ आसमान से उनके ऊपर इस तरह आ पड़ा, जिस तरह चींटी पर बारिश की बूँद। पाँचों उँगलियाँ फैलाए उन्होंने एक बार अपने शरीर को देखा और दूसरी बार ऊपर पड़ोसिन की छत की ओर, जहाँ कोई नजर नहीं आ रहा था।

रामभरोसेलाल को थोड़ी-सी झुझलाहट हुई। फिर ख्याल आया कि उनके रोमांस की पात्री की ही अगर यह करतूत है, तो चलो, इस रोमांस का यही प्रारम्भ सही। होना भी चाहिए। जिससे मन लगा हो उससे

अगर जम कर होली न खिली, तो होली में रोमांस कभी इतनी जड़ पकड़ ही नहीं सकता। छिः छिः, थू थू करते हुए उन्होंने अपने कपड़े उतारे उन्हें नल में धोया, फिर स्वयं नहाए और कपड़ों को धूप में सुखा दिया, जिससे सूख जाने पर उन्हें फिर पहना जा सके।

कुछ देर में उनका बदन भी सूख गया। तभी दरवाजे पर फिर खटखट हुई। उन्होंने झाँक कर देखा। वही पड़ोसिन का देवर, इस बार बिना दरवाजा खोले ही उन्होंने डरते-डरते पूछा, "अब फिर रंग पोतने आए हो क्या?"

"भाभी ने खीर भेजी है," लड़के ने बड़े भोलेपन से कहा और प्रमाण-स्वरूप अपने हाथ का कटोरा उघाड़ कर दिखा दिया।

रामभरोसे लाल ने तुरन्त दरवाजा खोल दिया। लड़का चुपचाप भीतर आया और उनके कमरे में खीर रख सीधे स्वभाव वापस जाता हुआ बोला, "भाभी ने कहा है कि खीर बिलकुल छोड़ना नहीं।"

अब तो रामभरोसे लाल के दिल में बल्लियाँ गड़ गईं और उन पर तिरंगे फहराने लगे। प्रेमिका ने प्रेमी के लिए खीर भेजी है। यह तो पुराने शास्त्रों में लिखा पाया जाने वाला एक खास तरह का रोमांस है। पुराणों में भी ऐसी कथाएँ आती हैं। सच है, पुराने शास्त्रकार जो कुछ लिखते थे, जीवन से ले कर लिखते थे...आजकल की तरह नहीं...।

कहीं खीर में कोई चालाकी न हो, इस भाव से पहले रामभरोसे लाल ने चम्मच से खीर को अच्छी तरह उलट-पलट कर देखा। बिलकुल साफ, शुद्ध, चमकदार मखानों की खीर थी। चम्मच में जरा-सी लेकर चखी। बहुत स्वादिष्ट और मीठी लगी। अब तो चम्मच पर चम्मच भर कर खाई जाने लगी। एक तो खीर मीठी, ऊपर से उसकी भावना मीठी... रामभरोसे लाल तृप्त हो गए। कटोरा और चम्मच माँज-धो कर रख दिया। मूँछों पर हाथ फेरा और शीशे में मुँह देखा और थोड़ा-सा मुसकराए। थोड़ी देर में लड़का आकर कटोरा और चम्मच ले गया।

रामभरोसे लाल खाट पर लेट गए, मन में ऊँची कल्पनाओं ने अनग

लेना आरम्भ कर दिया। पड़ोसिन वास्तव में एक फर्स्ट क्लास रोमांटिक हीरोईन है। पहले प्रेमी को त्रास देना और फिर खीर खिला कर रिझाना। अब रामभरोसे लाल उन लोगों की अक्ल पर मन ही मन हँसने लगे, जो किसी स्त्री से रोमांस लड़ाते डरते रहते हैं। अरे, इस गली में जूतों का डर रहा, तो कर लिए गली पार! यह तो हिम्मत का खेल है।

कुछ देर में रामभरोसे लाल के पेट में दर्द शुरू हुआ। ऐसा लगा कि भीतर ही भीतर कोई तूफान उठ रहा है, बादल गरज रहे हैं और एक सिहरन-सी बार-बार पेट की आँतों और नसों में दौड़ जाती है। दस मिनिट में ही उनकी नजर घर के एक त्याज्य कोने की ओर उठती रह गई, लोटा उठाया और भागे।

मगर खीर में "लक्कड़ हजम, पत्थर हजम" का मिश्रण था। चक्कर लगने शुरू हुए, तो लगते ही रहे। साबुन की एक बट्टी हाथ धोते-धोते खत्म हो गई, मगर पेट में मानों ताड़का धस गई थी और नाच-कूद कर रोमांटिक नृत्य कर रही थी। एक ही दिन में रामभरोसे लाल आधे झटक गए, कहें तो किससे कहें? रोएँ तो किस के आगे रोएँ? रात भर जाग कर आँगन में चक्कर काटते रहे और भाग-दौड़ चलती रही।

सुबह हो गई, हुलहड़ी की धूम मुहल्ले के कोने-कोने से उठनी आरंभ हुई। रामभरोसे लाल ने अब कुछ चैन पाया था, महल्ले के भूत दरवाजे पर इकट्ठे हो गए। लड़खड़ाते कदमों से रामभरोसे लाल ने होली के कपड़े पहने और एक बार छत की तरफ देख कर आतंक से सिहराते हुए उन भूतों के सामने आए, गुलाल मला और मलवाया—तभी पीछे से किसी ने इस ज़ोर का हुहत्थड़-सा मारा कि गिरते-गिरते बचे। पीछे देखा, सब हँस रहे थे, 'होली है, होली है' की धूम मच गई।

अब रामभरोसे लाल वापस घर में आए। उसी समय दूसरी पार्टी आ गई, फिर बाहर निकले, इस पार्टी में आदमी ज्यादा थे। कुछ देर में उन लोगों ने विचित्र हरकत शुरू कर दी। कोई गले में हाथ डालता, तो कोई

उनके बदन को अपनी मजबूत बाहों के बीच लेकर इस तरह भींचता जिस तरह भीम ने कीचक का दम निकाला था।

यह सिलसिला नहीं रुका तो रामभरोसे लाल को लगा कि कोई न कोई बात जरूर है, लोग उनकी पीठ की तरफ देख कर ही ये हरकतें करते हैं। उन्होंने तुरन्त अपना कुरता सरे बाजार निकाला और उसकी पीठ देखी। उसके बीचोंबीच साफ अक्षरों में छपा हुआ था, "मुझे प्यार करो!"

रामभरोसे लाल ने उसी समय कमीज के उतने हिस्से को फाड़ डाला। पल भर में ही उनकी समझ में सारी बात आ गई। यह भी याद आया कि एक बार उनकी श्रीमती जी और पड़ोसिन में कोई बात चल रही थी और पड़ोसिन ने अपने भाई की चिट्ठी उनकी श्रीमती जी से पढ़वाई थी, एक दूसरे के मैके के बारे में खूब बातें चली थीं, अपने-अपने मैके की खूब तारीफ हुई थी—और इन सब बातों में ईर्ष्या और जलन बाकायदा मिली हुई थी।

दोपहर तक रामभरोसे लाल नहीं टिक सके। घर की ओर भागे। वही लोटा, वही नल, वही साबुन की बट्टी, वही घर का त्याज्य कोना, शाम तक उन्होंने खटिया पकड़ ली और 'हाय हाय' करने लगे। पेट की ताड़ना से बार-बार क्षमा माँगने लगे, "अब कभी रोमांस नहीं करूँगा...!"

तीन दिन में हालत धीरे-धीरे सुधरी और दरवाजे पर खटखट हुई, तो उठ कर गिरते-पड़ते दरवाजा खोला, इस बार तो आने वाले को देख कर गिरते-गिरते बचे। साक्षात् उनकी श्रीमतीजी मौजूद थीं। एक हाथ में वही चिट्ठी फरफरा रही थी, जो उन्होंने पड़ोसिन को लिखी थी। आँख कपार पर चढ़ी हुई थीं जिनमें लाल डोरे खिंचे हुए थे, मुट्ठियाँ भिंची हुई थीं और होंठ फड़फड़ा रहे थे। यह देखते ही रामभरोसे लाल वहीं बेहोश होकर गिर पड़े।

कहानी का प्लाट

कहानी लिखना जितना आसान है—कहानी का प्लाट मिलना उतना ही कठिन है। कल्पना कीजिये कि आप कहानी लेखक हैं। अब या तो आप स्व० कानन डायल के प्रिय शरलक होम्स की तरह बैठे हुए रात भर सिगार फूँकते रहिये और समस्या सुलझाते रहिये या इधर-उधर आँख मारते रहिये और यहाँ वहाँ गप्पबाजी में कहानी सूँघते फिरिये।

दुनिया भर में भारतवर्ष ही ऐसा देश है जहाँ बहुत से सज्जन पैसे देकर भी कहानियाँ प्रकाशित कराने की चेष्टा में लगे रहते हैं। लेकिन जब से कुछ कहानी-लेखक यह भेद जान गये हैं कि अच्छी कल्पना के लिए अच्छे पैसे देने वाले भी हिन्दुस्तान में हैं तब वह अपनी आइडियों को अपने दिल के सातवें परदे में ऐसे छिपाये रहते हैं जैसे किसी प्रेमी की स्मृति।

अपने एक मित्र हैं, कहानी-लेखक हैं, इस माने में कि इन्होंने दो चार कहानियाँ सुन्दर सुन्दर लिखी हैं। यह महाशय पढ़ते बहुत हैं इसलिए कहीं न कहीं से कहानी सूँघ ही लेते हैं। इनका मित्र होना हमारे लिए बड़ी मुसीबत है। हमें इनके प्लाट सुनने पड़ते हैं। अपनी राय देनी पड़ती है। उस पर कहानी न तो वह स्वयं ही लिखते हैं, और यदि हम लिख डालें तो सारी दोस्ती समाप्त। साहित्यिक चोर कहलायें, चार जगह बदनामी हो सो अलग। इन हमारे मित्र महोदय का कहना है कि किसी सज्जन को मेरी कहानियों की इन कथा-वस्तुओं पर लार नहीं टपकानी चाहिये क्यों कि वह कल्पना के भाण्डार भर रहे हैं और कभी लिखने लग गये तो बड़े लिखने बड़े लिक्खाड़ों को पछाड़ देंगे।

बहुत से आदमियों को कहानियाँ लिखने का मर्ज होता है। हम भी इसी मर्ज के मरीज हैं और साथ में ऐब भी है। अभी इतने धुरंधर नहीं

हुए हैं कि बिना कल्पना के कलम की नोक से साहित्यिक प्रतिमा बिखरती चली जाय और ढला हुआ सीसा कम्पोजिंग के लिए पाण्डुलिपि की प्रतीक्षा में पड़ा रहे।

बहुत दिनों से कलम अकुला रही थी और दिमाग खाली था। यों समझ लें साहित्यिक जुकाम हो गया था। किसी प्रकार की सुगंधि और दुर्गन्धि लगती ही नहीं थी। हमें डर था कि कहीं लकवा तो नहीं मार गया। एक समय वह था कि कथावस्तु इस रफ्तार से दिमाग में आया करती थी कि लिखने का समय न मिलने के कारण नोटबुक में दर्ज करने पड़ते थे। एक प्रसिद्ध लेखक से जब हमने डींग हाँकी कि हम एक दिन में एक कहानी लिख सकते हैं तब उन्होंने कहा था कि बच्चा कभी तरसोगे जब कलम जाम हो जायगी। हम सच बताएँ हमें बहुत बुरा लगा था।

इसी भावना से मैं साहित्यिक उपज के क्षेत्रों में एक दिन चक्कर काट रहा था कि एक जगह लम्बकर्णों की भांति कान लगाये कुछ महोदय कथा-सी सुनते दिखायी दिये। उपदेशामृत पान करने के लिए हम भी पहुँचे। कथावाचक कोई बहुत ही आधुनिक वक्ता मालूम पड़े क्योंकि कथा सत्यनारायण की नहीं हो रही थी बल्कि कुछ जूतों का जिक्र हो रहा था। कोई घटना सुनायी जा रही थी। भनक कानों में पड़ते ही मैं चौकन्ना हो गया। बैठते न बैठते सबसे पहला प्रश्न जो मैंने वक्ता से किया वह यह था—'क्षमा कीजिये, आप कोई कहानी-लेखक तो नहीं हैं?'

उन्होंने आश्चर्य से हमारी ओर देखते हुए कहा कि खानदान भर में यह रोग किसी को नहीं हुआ। मैं इतमीनान से घटना सुनने बैठ गया और मनमोदक पकाने लगा। वह ज्यों ज्यों घटना सुनाते जा रहे थे मैं उसकी रोचकता पर लट्टू हुआ जा रहा था। बीच में बार बार ख्याल आता किस सुन्दर ढंग से मैं इसे लिख कर पत्रिका में भेजूंगा।

घटना यों थी:—

ऊँची हवेली में किसी पर धड़ाधड़ मार पड़ रही थी जिससे गाँव का

प्रशांत वातावरण हाय-हाय करने लगा था। नीचे से मिसी, परचूनिये ने भय और आतंक से ठाकुर की हवेली की ओर ताका। इतने में धीरजिया पहलवान पास आकर बगल से लाठी टिका, एक पैर आराम देता हुआ बोला—'देखा इस ठाकुर को? यह धन का नशा है!'

'गरीब की हर जगह मौत है।' मिस्री ने समर्थन किया। कलासो गूजरी सिर पर मटकी रखे आयी तो वहीं टिक गई, भौंहें चढ़ाकर उसने कहा, 'हाय री दैया, जु का है?'

'भूरे के लड़के पर मार पड़ रही है। भवानी चेत रही है ठाकुर की। भूरे चोर था तो क्या, नजर उठाने पर आँखों में तकवा भोंके देता था। जब तक जिया ठाकुर उससे मित्रता गाँठे रहा। उसके मरते ही राक्षस हो गया।' मिस्री ने तिरस्कार से हवेली की ओर ताका।

पहलवान ने मूछों पर ताव देकर कहा, 'भूरे आदमी था, छप्पन गाँवों के चोरों का उस्ताद था, लेकिन मजाल है जो लड़के पर जरा भी रंग चढ़ने दिया हो। कहता था मरते मर जाऊँगा पर बेटे को चोरी नहीं सिखाऊँगा। मरती बेर ठाकुर को सौंप गया था टहल करने को और याराने का परनाम भुगत रहा है लौंडा।'

गुजरी ने मटकी हिला कर कहा, 'अरे गलियारे में छुपिडयार कंचे खेलती फिरे है और—ई लड़का बदन तें पानी चुआय-चुआय मरा जात है, तोऊ चैन नाहीं मिलत—या ठाकुर कोऊ पुलतो भौका कसाई को औतार रहै?

और ऊपर ठाकुर ग्यारह वर्ष के लड़के पर कथचियाँ सूते रहा था, चिल्ला रहा था, 'हरामजादे, चोर की औलाद अँगूठी तैने नहीं चुरायी तो क्या भैंस खा गयी।' घर से बाहर धक्का देकर जोर से फाटक बन्द कर लिया, 'इतना पीटने पर भी जबान नहीं खुली सुअर की। जा हरामी, असल का होगा तो मुँह न दिखाइयो।'

'मैं क्या करूँगा मालिक, मुझे घर से न निकालो। लड़का करुणा से तड़प उठा।

'वही कर बे, जो तेरा बाप करता था। हुँ, चोर की सन्तान और क्या करेगा।' ठाकुर ने दरवाजा जरा-सा खोल बात का उत्तर दिया और फिर बन्द कर लिया।

पीछे खड़ा ठाकुर का चिरंजीव, भय से आँखें झपका रहा था। 'चल बे चिरंजीत अन्दर।' और ठाकुर आगे आगे वह पीछे पीछे हो लिया।

दाद फरियाद सुनने को बाहर खड़े असहाय दर्शक लड़के के चारो ओर जुट गये। गुजरी ने कहा, 'केता भला रहे भूरा। अरे यह लड़के ऊतकपूत होत ही रहैं, अपन चँदवा ने एक बेरि काहे न भूरे की लौंड़िया को छेड़ दियो हतो। भूरे तीन दिना कटार छिपाये फिरत रहा। पाई ठाकुर के कहन सुनन तैं खून माफ कर दियौ हतौ।'

उसी चोर का ग्यारह वर्षीय पुत्र धीरा अपनी मृत माँ और बहन को यादकर फूट फूटकर रोने लगा। उसे याद आये वह दिन जब भूरे कुशल व्यापारी की तरह लोगों की परम्परागत नैतिक धारणाओं का खंडन करता था, दूसरे पेशों की तरह चोरी भी एक पेशा है। दुनियाँ में कौन किसी पर रहम करता है। जहाँ स्वारथ से स्वारथ टकराते हैं वहीं व्योपार पैदा हो जाता है।

भूरे इस बात में कुशल था कि किस प्रकार चोरी का गहना रातों ही रातों में गलाकर विशुद्ध सोने चाँदी में परिवर्तित किया जा सकता है, किस प्रकार बिना आवाज किये पूरी की पूरी दीवार फाड़कर हाथी तक के घुसने लायक सेंध बनाई जा सकती है और किस प्रकार चोरी का माल पके माँस की भाँति हजम हो सकता है। गाँव के सब लोग जानते थे कि वह चोर है, उसके घर खाया जाता है चोरी का, पहना जाता है चोरी का और खिलाया जाता है चोरी का। लेकिन गाँव के लोग अपने लिए इसकी ओर से निश्चिंत थे। रात-बिरात सड़क पर पड़ा हुआ चाँदी का टुकड़ा भी यथा समय भूरे उसके मालिक के पास पहुँचा देता था। गाँव के रीति-रिवाजों में वह सम्मिलित होता था। दूसरों के घर जिमने जाता

था और स्वयं लोगों को शुभ अवसरों पर जिमाता था। भूरे इसे 'साख' कहता था और लोग कहते थे कि है तो वह गाँव का आदमी ही; केवल उसका धंधा और लोगों से तनिक भिन्न है।

एक एक करके यह बातें ग्यारह वर्षीय भूरे के छोटे से मस्तिष्क में घूम गयी।

× × × ×

पूरे नौ वर्ष वर्षा की फुहार की तरह बीत गये। लोग चिरंजीत के पाठे शरीर को देखते तो कहते कि ठाकुर के परलोक के लिए बिस्तरा गोल करते ही लड़के पर रंग आ गया।

शनीचर की कस्बे में प्रति सप्ताह होने वाली पैंठ कर चिरंजीत दिन ढले अपने गाँव की ओर रवाना हुआ। हाथ में लाठी और पैरों में नया नकोर जरी का चमचमाता हुआ सलमसीत देसी जूता। लाला निहालसिंह के बाग के पास जब उसका जूता चरमर करता हुआ चमका तो पीछे से किसी ने पुकारा, 'कौन जाता है?'

चिरंजीत खतरा समझ गया। धरती से पूरी लाठी को समानान्तर रेखा पर कर वह उड्डी दे चला। पीछे से भी भागने की आवाज आयी। मुड़कर देखा तो चार आदमी थे। चिरंजीत पूरे दम से भागा। बछिया का पुल पार होते ही उसने फिर पीछे नजर घुमायी, केवल एक आदमी नजर आया और उसके बहुत दूर पीछे बाकी तीनों, धीमे से वह पुल की ओट में छिप गया।

पीछा करने वाले के नजदीक आते ही उसने घुमाकर नयी लाठी उसके सिर पर दे मारी। वह 'हाय' करके गिरा। फिर लाठियाँ बजनी शुरू हो गयीं। उसे अधमरा कर, उसने जूते वहीं छोड़ बेतहाश गाँव की ओर दौड़ना शुरू किया।

बच तो आया लेकिन बहुत दिनों तक जरी के नये नकोर जूते के चले जाने का दुख उसके दिल पर छाया रहा।

× × × ×

इस बीच धीरसिंह डाकू इलाके के आतंक का चिह्न हो गया। वह चलते राहगीरों को लूटता पीटता और घरों को जला देता। निहालसिंह के बाग के सामने का रास्ता चलना बन्द हो गया। पुलिस के दस्ते गाँव गाँव घूमने लगे। लोग पुलिस को देखते ही डर से अधमरे हो जाते, लाल पगड़ी के भय से नहीं बल्कि इस बात से कि जो भी गाँव यह लोग पीछे छोड़ते उसी में घटना होती। यह निश्चित् था कि सिपाही यहाँ से गये और डाका पड़ा। धीरसिंह अव्वल नम्बर का काइयाँ था और इस प्रकार उसने लोगों के दिलों में अपने से अधिक पुलिस भय पैदा कर दिया था। अगले गाँव के लोग पिछले गश्तपर ही पहुँचकर सूचना दे देते कि उनके यहाँ कुशल है और पुलिस के वहाँ पहुँचने की कुछ आवश्यकता नहीं है।

किंतु लोग यह नहीं जान पाये कि धीरसिंह कौन था और कहाँ से आया था।

कुछ दिनों में ठाकुर चिरंजीत पिछली घटना को भूल गये। ठकुराइन को लेकर गंगा की वार्षिक परबी नहाने हरिद्वार गये। लौटे तो फिर वही रास्ता। गये थे तो आस पास के दो चार गाँव के धर्मप्राणी एक जगह मिलकर गये थे। लौटने में संगी बिछुड़ गये और रह गयी ठाकुर साहब की अकेली बहली जो चलते समय स्टेशन मास्टर को सेवा का अवसर देने के लिये छोड़ दी थी।

बहली में बैठने से पहले ठकुराइन के पीले सौन्दर्य साधनों को एक संदूक में बन्द कर धरन में छिपा दिया गया था बहलवान को होशियार रहने का आदेश दे और धीरजिया पहलवान को बहली के पिछाड़ी जमा-कर ठाकुर ने बैलों को हाँकने की आज्ञा दी। पलायन करते समय ठाकुर ने स्टेशन मास्टर की सेवा के उपलक्ष्य में उसे आश्वासन दिया, 'मास्टर, तैने परसन्न कर दिया। घबराना नहीं, अब जब कभी सहर जाँगे तेरी ही गाड़ी में चढ़ेंगे।'

स्टेशन मास्टर इस आश्वासन से प्रसन्न हुआ था नहीं यह तो नहीं

कहा जा सकता, यह बहुत कुछ उसकी सरकार-भक्तिपर निर्भर था क्योंकि यद्यपि युद्ध के दिन थे तो भी सुरम्य स्थानों की यात्रा का लोभ दिलाने वाले बढिया बढ़िया पोस्टर स्टेशन मास्टर ने खूबसूरती के लिए स्टेशन की दीवारों पर चिपका रखे थे।

बैलो को 'डाह' 'डाह' करते हुए बदलवान को, उहकी बचने के लिए कहते कहते ठाकुर को लाला निहालचद का बाग नजर पड़ा। झुटपुटा हो चला था और संध्या माई गोधूलिका मटमैला आवरण सस्रृति पर बिछाती हुई अवतरित हो रही थी। ठाकुर का दिल धक-धक करने लगा था। अपने कारण नही बल्कि पास बैठी अपनी 'दुर्बलता' के कारण। मानो कोई विशेष बात न हो इस प्रकार ठाकुर ने याद दिलाने के लिए धीरजिया को सूचना दी, 'धीरजिया', निहालसिह के बाग तक तो आ गये।

मगर उस देवता ने उसका सीधा अर्थ ही लिया। ठाकुर को आश्वस्त करता हुआ बोला, 'घबराइयो मती मालिक, धीरजिया की जान सलामत रहे तबलों आँच नहीं आयेगी।'

'कौन जा रहा है?' का तगड़ा बोल सुनते ही ठाकुर ने हाथ मे पकड़ी हुई आर दाँये बैल के पुट्ठे में भोंके दी। बैल उम्हाया, सिर जरा ऊँचा किया, जोर लगाया और बाँये सहयोगी का सहारा न पा जोर से तीर की तरह जुये को कन्धे से झटक कर भाग निकला। जुए की जोत धरती पर जोर से टिकते ही ठकुराइन ने झटके से सामने रखे गंगाजल के कटोरदान पर मुँह मारा और गाँव भर को बाँटा जाने वाला सारा प्रसाद स्वयं पी गयी। उसके मुँह से हाय निकली।

इधर गाड़ी को पाँच चार लठैतों ने घेर लिया। धीरजिया पहलवान ने यही सोचा कि इस समय आँच आये न आये। जान का सलामत रहना जरूरी है क्योंकि सीने के सामने लाठी ही नहीं, बस गज की दूरी पर दुनाली का मुखार बिन्द भी दृष्टिगोचर हो रहा है। उसने लाठी धरती पर डाल दी।

एक लठैत ने ठाकुर का बाहर निकला हुआ चेहरा देखा तो चिल्ला उठा, "अरे यही रहै वा, जो न मँगलवा के टाँग तोरिन रहै !"

मँगलवा सबसे पीछे था। अपने असामी की बात सुनी तब अगाड़ी आ गया। झट एक थप ठाकुर के मुँह पर लगा, मँगलवा ने कहा, "आज तोर हड्डी पसली कच्चो नाय चबाय गयौ तो मँगलवा नाईं भंगी का कह दीओ।"

एक अन्य ने दूसरे बैल को भी मुक्त किया। दोनों ने ठाकुर को बीच में लिया और धीरजिया के जोर से जुए को उठा बहली बाग में खींच ले गये। बहली को अंधेरे में पेड़ के तने से टिकाकर एक लठैत ने कहा, "मँगलवा, बाँध दे उसकी मुश्कें !" और मँगलवा इसके लिए पहले से ही तैयार था। ठाकुर को जमीन पर पटककर मुश्कें कस दी गयीं।

इसी बेला दूर से एक काला घोड़ा दौड़ता हुआ उन लोगों के समीप आया—डाकू लोग मिलकर धीमी आवाज से बोले, 'काली माई की जै !'

ठाकुर की नजरें काले घुड़सवार से मिली। यही था धीरसिंह डाकू ! अचानक नौ वर्ष पहले की वह घटना चिरंजीत के मस्तिष्क में घूम गयी। उसके पिता ने नामी चोर भूरे के लड़के धीरा को बाहर सड़कों पर ढकेल दिया है और कह रहा है, वही कर वे जो तेरा बाप करता था ! हुँ ! चोर की औलाद और क्या करेगी !' और धीरा का अर्द्ध नाम संस्कृत होकर धीरासिंह हो गया था ! धीरसिंह डाकू !!

समय आ पड़ने पर मनुष्य कैसे कच्चे धागे का सहारा लेना चाहता है, कैसे वे सिर पैर के बेतुके बहाने बनाने की कोशिश करता है ! ठाकुर ने कहा, 'धीरसिंह' मैं हूँ चिरंजीत !

धीरसिंह जोरका ठहाका मारकर हँसा। चिरंजीत सहम गया। यह विकट हास्य उसके पिता की कटूक्तियों का उपहास था या उसके शेष जीवन के प्रति निर्ममता का क्रूर नृत्य ! यही वह निश्चय न कर सका था। धीरसिंह ने कहा, 'चिरंजीत ! कौन चिरंजीत ?'

चिरंजीत ने फिर पास बहता हुआ तिनका पकड़ा, 'वही तुम्हारे पिता के मित्र का लड़का—ठाकुर का चिरंजीत !'

धीरसिंह अब की चहका ! 'चिरंजीत, अरे चिरंजीत तुम हो !' घोड़े से नीचे आ धीरसिंह ने उसे छाती से लगा कर कहा, माफ करना भय्या, मैं पहचानता भी कैसे ! नौ साल हो गये थे। ये इसकी मुश्कें खोल दो !'

चिरंजीत ने अनजाने में ही अमिट सिद्धांत कह दिया, 'जो मुसीबत में होता है उसे पुरानी बातें जल्दी याद आती हैं !'

धीरसिंह ने उसका हाथ पकड़ कर और लोगों से कहा, 'जाओ अपना काम देखो तुम लोग !'

एक ने कहा, 'लेकिन सरदार, इन्होंने मंगलवा की टाँग पिछले दिनों तोड़ दी थी !'

'उसकी लाश कहाँ है ?' धीरसिंह ने कड़ककर पूछा।

'हजूर, अभी तो मैं जिन्दा हूँ !' मंगलवा ने अपनी सूरत दिखा कर सफाई दी।

धीरसिंह ने कहा, 'मरदूद दूसरे आदमी से टाँग तुड़वा कर भी अभी जिन्दा है क्यों न तुझे गोली मार दी जाय !'

'माफ करें सरकार !' मंगलवा धरती पर लोट गया।

बैल ढूँढ़ ढाँढ़ कर बहली जोत दी गयी। चलती बेर भाभी के पैर छूकर धीरसिंह ने कष्ट की क्षमा चाही। चिरंजीत ने कहा, 'यार पिछली बार मेरे जूते छूट गये थे। जूते ज्यों के त्यों रखे थे। सौभाग्य का यह सुभाग भी पाकर जिस समय चिरंजीत ठाकुर बहली पर आसीन हुआ, धीरसिंह ने कहा, 'भय्या चिरंजीत, करनहार ठाकुर की अंगूठी मैंने नहीं चुरायी थी। 'मुझे मालूम था,' चिरंजीत ने कहा, 'उसे बेचकर मैंने कंचे खरीदे थे।'

प्रसिद्ध डाकू धीरसिंह के मन के भीतर चोरी के इस आरोप के प्रति जो संचित धारणा थी वह उस दिन उन दोनों के हास्य में खो गयी।

\+ \+ \+ \+

हम सन्तोष के साथ वक्ता महोदय की इस घटना को उपलिखित रूप में नोट करते जा रहे थे। मन में शीर्षक सोच रहे थे। 'चोरी का परिणाम' अच्छा रहेगा या 'याद न भूली।' लेकिन कुछ जमा नहीं कि एक श्रोता ने पूछा, 'अच्छा पंडितजी, वो डाकू मारिगो या जिन्दा है ?

पंडितजी ने पास में रखा शरबत का गिलास चढ़ाकर कहा, 'और हमें कुछ नहीं पता, हमने तो कल यह एक पुस्तक में पढ़ी थी, जैसी पढ़ी वैसी सुना दी।'

और हमारे हाथ से नोट-बुक व पेन्सिल छूटकर धरती पर गिर पड़ी। हम टुकुर टुकुर मुँह बाये पंडितजी का मुँह ताक रहे थे। जी चाहा कि यदि पंडितजी की वह पुस्तक इतनी बड़ी होती कि हम उसमें दब जाते तो जनम जनम के संकट काट इस लेखक जीवन से छुट्टी पाते!

ये और इनके भाई पीते हैं हमेशा

शायद संसार के बड़े-से-बड़े निर्णय रविवार को होते हैं। हुलाशचन्द रविवार को सुबह-ही-सुबह चाय के समय दर्शन में नहीं चूकता। यह दूसरी बात है कि मैं चाय की जगह सुबह को हमेशा दलिया खाता हूँ, और दलिया देखकर हुलाशचन्द की रूह कबूल हो जाती है। फिर भी हुलाशचन्द में मुझसे ज्यादा ज्ञान है यह स्वीकार करने में मुझे संकोच नहीं—वास्तव में यह हुलाशचन्द की ही हिम्मत है कि वह शरीर के साथ इतने संकट लगाकर भी जिए चला जा रहा है। मैं तो कभी का ठप हो जाता।

लिहाजा तीस दिसम्बर सन् चौवन की सुबह को चौड़ी कुर्सी पर, ठीक मेरे सामने बैठकर, हुलाशचन्द सीधा होकर बोला, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ—बताओगे?

अच्छा, बता दूँगा। पूछो, मैंने कहा।

बात बताने के एहसान को चुपचाप स्वीकार करते हुए उसने कहा, मेरी ख्वाहिश है कि जब मैं मरूँ, तो तुम मुझे कन्धा देने जरूर आओ—आओगे?

आ जाऊँगा, मैंने पहले स्वर में ही कहा। मगर तुम्हें यह इलहाम कैसे हो गया कि तुम मरोगे?

मैं चाय पीता हूँ और तुम दलिया खाते हो, हुलाशचन्द ने कारण बताते हुए कहा। मैं चाय छोड़ नहीं सकता क्योंकि मुझे चाय पी पीकर स्त्रियों को कोसने की कुछ आदत पड़ गई है।

अरे! मैं बीच में ही बोल पड़ा। स्त्रियों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?

उसने सिर उटका कर कहा, स्त्रियों की यह आदत है कि वे बदसूरत पुरुषों की ओर कभी आकर्षित नहीं होती—है ना?

हो सकता है, मैंने कहा। फिर ?

दूसरी ओर, यह भी सही है कि वे दिनरात इस प्रयत्न में लगी रहती हैं कि पुरुष उनकी ओर जरूर आकर्षित हों—वे चाहे बदसूरत हों या खूबसूरत। है ना ?

हाँ, श्रीमती स्वयं इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं, मैंने स्वीकार किया।

बस, इसी से मेरा जी फैंकता है, हुलाशचन्द ने कहा।

यह तो तुम्हारे साथ बड़ी ट्रेजिडी है, मैंने सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए कहा। इस जमाने मे स्त्रियों को अपनी ओर आकर्षित न कर पाना बहुत बड़े दुःख की बात है। रङ्ग भी तुम्हारा चाय से ज्यादा काला नहीं है। जब लोगों को चाय का रङ्ग पसन्द आता है, तो तुम्हारा भी आना चाहिए। अभी हाल ही में अमरीका में चाय की एक प्रतियोगिता हुई थी। उसमें एक सज्जन एक ही स्थान पर बैठे-बैठे चाय के अस्सी प्याले पी गये। अगले दिन अखबार में नाम जो निकला, तो तीन सौ छिअत्तर लड़कियों ने उसके पास अपने-अपने फोटो भेजे...।

हुलाशचन्द ने मेरी तरफ शंका की नजरों से देखा। फिर बोला, यह तुम मेरी कमजोरी का मजाक उड़ा रहे हो...।

मजाक बना रहा हूँ कि दुनियाँ के आँकड़े बता रहा हूँ। मालूम है हमीदाबानू पहलवानों मे इतनी हेंकड़ क्यों है ? मगर तुम्हें क्या मालूम होगा, तुमने उससे कोई इण्टरव्यू तो की नहीं—वह रोज सुबह कलेवे के साथ चाय के नौ प्याले पीती है। चर्चिल चाय के बल पर ही लगातार सिगार पीता रहता है, वरना आज इङ्गलैंड का प्रधानमन्त्री पद किसी और को सम्भालना पड़ता। मैलेन्कोव के इसीलिये अपने पद से हट जाने की सम्भावना है कि वह चाय नफनफा कर पीता है और यह बात पोलिटब्यूरो के सदस्यों को पसन्द नहीं है...।

अच्छा, सुन लिया चाय पर तुम्हारा लेक्चर, हुलाशचन्द ने परेशान होकर कहा। भाभी साहबा को बुलाओ और...

मेरा ख्याल है कि तुम ब्रुकबाण्ड की चाय पिया करो, मैंने सलाह के तौर पर कहा।

क्यों यह कुछ कम हानिकारक होती है? हुलाशचन्द ने पूछा।

यह तो पता नहीं, लेकिन इससे खूबसूरती आती है और जिसके पास पहले से ही है और बढ़ जाती है। मैंने विश्वास के स्वर में बताया।

वह कैसे? हुलाशचन्द इसे भी मजाक समझ रहा था।

मिस इण्डिया ब्रुकबाण्ड की चाय पीती है यही इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। देखा नहीं चाय की किसी दूकान पर इस तरह का कोई पोस्टर?

ओह! देखे हैं, देखे हैं, हुलाशचन्द ने हँसते हुए कहा। मगर इस तरह चाय पिलाने से छुटकारा नहीं मिलेगा यह बताये देता हूँ। मैं बहुत घिसा-पिसा हूँ। तुम्हारी बातों को अच्छी तरह समझता हूँ। भाई साहब, यह चाय ही है, जिसके सहारे मैं दफ्तर का हेड क्लर्क हो पाया हूँ। वरना जहाँ तीसरा पहर हुआ नहीं कि सिर में दर्द शुरू हो जाता है और जी चाहता है कि फाइलों को उठाकर फेंक दूँ। चाय का एक प्याला वह ताजगी लाता है कि बस—समझे?

समझ लूँगा, मैंने कहा। इतना तो समझ गया कि चाय की बदौलत आप हेडक्लर्क तक ही रह गए, इससे ऊपर सुपरवाइजर के पद तक नहीं पहुँच सके। साथ में आपके सिरदर्द को बधाई है कि उसे एक नियमित निवास-स्थान मिल गया।

हुलाशचंद ने दो-तीन बार जल्दी-जल्दी अपनी पलकों को झपकाया। फिर बोला, अच्छा, यह बताओ कि सबसे ज्यादा चाय, चीन और हिन्दुस्तान में ही क्यों पैदा होती है? जरूर कुदरत ने यहाँ के लोगों के लिये चाय को जरूरी समझा होगा।

जी हाँ, कुदरत बहुत अक्लमन्द है। उसने हिन्दुस्तान में चिरायता और बायबिडङ्ग भी काफी मिकदार में पैदा किया है और यहाँ के निवासियों को इन चीजों का सेवन भी नियमित रूप से करना चाहिये...और

आजकल बिलायती घी भी, कुदरत यहाँ मिकदार में पैदा कर रही है! फिर आप क्यों झींकते हुए आया करते हैं कि सरकार में रिश्वत चल गई, इसलिये विशुद्ध वनस्पति तत्वों से बने हुए घी में रङ्ग मिलते-मिलते रह गया!

हुलाशचंद ने कहा, अच्छा, अच्छा मैं खूब अच्छी तरह जानता हूँ कि चाय में और तुम में उतना ही विरोध है, जितना बिल्ली और चूहे में...।

मैं उसकी उपमा की असंगति पर हँसते हुए बोला, नहीं इसके खिलाफ मैं चाय के सबसे बड़े हमदर्दों में से हूँ। मैं समझता हूँ कि एक जमाना वह भी तो था, जब विदेशी उद्योगपतियों से स्थापित भारतीय टी एक्सपैंशन बोर्ड की तरफ से भारत में हजारों स्टाल लगाकर एक-एक पैसे में चाय का एक-एक प्याला पिलाया जाता था, एक चाय की पुड़िया दी जाया करती थी और बाइसकोप मुफ्त में दिखाया जाता था। जिस प्रकार दो और दो चार होते हैं, उसी तरह उन लोगों के व्यय और परिश्रम का मुआवजा भी भली प्रकार मिलना ही चाहिये, नहीं तो भगवान के दरबार में क्या जवाब दिया जायगा।

इतने में श्रीमतीजी चाय का गिलास भरकर ले आईं और मेज पर रख दिया। मैंने कहा, लीजिये, चुस्की लगाइये...

बेचारा हुलाशचन्द विचित्र परिस्थिति मेंफँसा। शायद इस समय चाय उसे चिरायते का दूसरा रूप लग रही थी। वह एक बार चाय की ओर देखता और एक बार मेरी ओर। यह देखकर श्रीमतीजी हँस पड़ीं। बोलीं, क्यों, मालूम होता है आज दलिया खाने को जी कर रहा है।

अकड़ कर हुलाशचंद ने कहा, नहीं जी, चाय में जो स्वाद है वह दलिया में कहाँ। कोई तुक है कि गेहूँ को दाल की तरह दलकर पानी में पका लिया और बन गया भोजन। उसने चाय का गिलास उठाकर फिर ज्यों का त्यों रख दिया और जेब से रूमाल निकालकर उसने उसे साव-धानी के साथ उठाया। एक चुस्की लेते ही शायद उसके दिमाग की कोई

नस हिली और वह बोल उठा अच्छा, मौलाना अबुलकलाम आजाद निखालिस चीनी चाय पीते हैं और जहाँ तक मेरा खयाल जाता है, भारत में उनके जैसा चाय का शौकीन चिराग लेकर ढूँढ़े भी तो नहीं मिल सकता। यह बात तो तुम्हें भी माननी पड़ेगी कि शिक्षा मन्त्री के पद पर जो योग्यतापूर्ण कार्य उन्होंने सरंजाम दिये हैं...

वह और कोई नही दे सकता, मैंने बात पूरी की। और मैं यह भी मानता हूँ कि अगर मौलाना अबुलकलाम आजाद चीनी चाय न पीते, तो चीन और भारत में कभी भी पंचशील के आधार पर समझौता नहीं हो सकता था। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि स्वर्गीय महात्मा गांधी ने बकरी का दूध न पीकर यदि नियमित रूप से चाय का सेवन किया होता, तो हत्यारा इतनी आसानी से उन्हें अपनी गोलियों का शिकार न बना पाता। मालूम है, जब पंडित जवाहरलाल ने देखा कि चीन के प्रधानमंत्री श्री चाऊ एन लाई को भारत के आम बहुत पसंद आए, और उन्होंने आमों के टोकरे भर-भर कर चीन भेजे तो चीन में क्या समस्या उठ खड़ी हुई?

क्या? हुलाशचन्द ने उत्सुकता से पूछा।

चीन में यह समस्या आ पड़ी कि पंडित जवाहरलाल नेहरू को इसके बदले में क्या भेजा जाए? चाऊ एन लाई चीनी चाय भेजना चाहते थे और माओ से तुङ्ग का विचार था कि बदले में उतनी ही ताकत की चीज भेजनी चाहिए, जितनी ताकत के कलमी आम होते हैं। चीन वाले बड़े चालाक होते हैं। वे समझते थे चाय में बहुत ज्यादा ताकत होती है और बदले में चाय भेजकर राष्ट्रीय धन का अपव्यय करना है। लिहाजा उन्होंने चाय के बँधे बँधाए बंडल खुलवा दिए और उनकी जगह लीचियाँ भेजीं। मगर चीन वालों की इस कंजूसी की खबर यार लोगों से कब छिप सकती थी।

श्रीमतीजी ने कहा, आपने मुझे तो यह खबर कभी बताई ही नहीं।

हुलाशचन्द ने फिर मेरी ओर अविश्वास की नजरों से देखकर अपने गिलास को मुँह से लगाया और बाकी पेय को गट-गट करके पी गया। फिर बोला, अगर गप बाजी में प्रतियोगिता हो, तो तुम्हारा नंबर...

चौथा आएगा, मैंने बीच में ही उसकी बात पकड़ कर कहा। पहला नम्बर भारतीय टी एक्सपैंशन बोर्ड का होगा, जो बराबर विज्ञापन देता रहता है कि चाय पीने से दिन भर की थकान उतर जाती है और एक दिन ज्यादा की क्रियाशक्ति मनुष्य के भीतर पैदा हो जाती है। दूसरा नम्बर स्वर्गीय महाशय गोयरिंग का था, जो अफसोस है कि अब हम संसारियों के बीच नहीं रहे ! तीसरा नम्बर कांग्रेस के उन कर्णधारों का है, जो पूंजीपतियों की सहायता से भारत में समाजवाद की स्थापना के गीत गा रहे हैं, और इसके बाद यदि कोई और वाजिब दावेदार न उठ खड़ा हुआ, तो अपना नम्बर आ सकता है।

श्रीमतीजी मुँह में आञ्चल दबाकर, गिलास लेकर वापस चली गईं। हुलाशचन्द आखिर तंग आकर बोला, अच्छा, अगर मैं चाय पीना छोड़ दूँ, तो और क्या पिऊँ ?

चावल का पानी यानी माड़, मैंने उत्तर दिया।

हुलाशचंद के मुँह का स्वाद बिगड़ गया। माँड़ ! उसके मुँह से निकला।

हाँ, माँड़, मैंने कहा, इच्छानुसार उसमें चीनी, शक्कर या नमक मिलाकर। जो लोग चाय पीते हैं, वे दूध से कतराते हैं और माँड़ से अच्छा पेय उनके लिये कोई नहीं है। खिलवा चावल खाइये और ऊपर से डटकर माँड़ पीजिये या इससे उल्टा कीजिये। माँड़ के पीने का कोई खास समय नहीं है। जिस वक्त तबीयत चाहें पी सकते हैं। गरम-गरम ही पीना चाहें, तो थरमस में भर कर रखा जा सकता है। वास्तव में इसका नाम रुचता नहीं। अंग्रेजी में इसे 'राइस-पौरिज' के नाम से पुकारा जाता है। तुम भी इसे राइस-पौरिज कह कर ही पीया करो।

कुछ देर तक माँड़ की कल्पना को पचाने की चेष्टा करके हुलाशचन्द बोला, माँड़ का नाम सुनकर हँसी आती है।

हँसते-हँसते तो पीना ही चाहिये, मैंने कहा। तीन लोकों में इससे बढ़िया टानिक मिलना मुश्किल है। चाय को भी शुरू-शुरू में लोगों ने दवा की तरह कलेजे के नीचे उतरा था। लोग जब कड़ुवी काफी तक को प्रेम के साथ पी जाते हैं, तो माड़ तो किस खेत की मूली है। मुझे तो काफी में से भुनी हुई मूँगफली की बू आती है...

वह तो मुझे भी आती है, हुलाशचन्द ने कहा। फिर सहसा उसके चेहरे पर कुछ परेशानी के लक्षण दिखाई दिये। मैंने कारण पूछा। उत्तर में उसने कहा, अच्छा, अब मैं चलता हूँ। बात यह है कि मुझे अकसर कब्ज की शिकायत रहती है और जब चाय के दो प्याले पी लेता हूँ, तो शौच जाने की आवश्यकता अनुभव होने लगती है। चलता हूँ, ट्राई तो करनी ही पड़ेगी।

भीतर से श्रीमतीजी 'व्हीट-पौरिज' का कटोरा लेकर आ रही थीं। उन्होंने हुलाशचन्द की अन्तिम बात सुनकर, मुँह में धोती का पल्लू दबाकर अपनी हँसी रोकी और हुलाशचन्द उन्हें नमस्कार करके जल्दी-जल्दी जीने से उतर गया।

लो फिर आ गई नौचन्दी

हर भला और अक्लमन्द आदमी मेरे इस विनम्र विचार से सहमत होगा कि पत्नी को प्रसन्न करना एक टेढ़ी खीर है। यदि देवी जी तवे की कालिख से थोड़े से दाग पवित्र होली के उपलक्ष्य में आपके मुख-मण्डल पर लगाना चाहें, तो आपके ना-नुकर करने की कोई गुञ्जाइश नहीं है, भले ही यह काम आप उन्हें केवल प्रसन्न करने के लिए करें।

इसी प्रकार के कठोरतम संघर्ष में हमारी होली तो किसी प्रकार बीत गई, लेकिन नौचन्दी सिर पर आकर सवार हो गई। जिस प्रकार साँस रोकने की कसरत को प्राणायाम कहा जाता है, उसी प्रकार गृहस्थियों को नौचन्दी के शुभागमन से पहले ही अर्थायाम करना पड़ता है, यानी पैसा रोकने की कसरत उनके लिए लाजमी हो जाती है। मेरे जैसे कलमजीवी आदमी के लिए इस तरह की कसरतों से घबराना स्वाभाविक है। लेकिन इस बार श्रीमती जी ने इस कष्ट से मुझे छुट्टी दे दी थी। उन्होंने काफी दिनों पहले से अर्थाभाव का अभ्यास कर लिया था।

नौचन्दी के तीन दिन गुजर गये और हम लोगों में यह पारस्परिक मौन समझौता रहा कि अभी नौचन्दी हलकी है, इसलिए अभी से पैरों की मरम्मत नहीं करानी चाहिये। लेकिन चौथे रोज सुबह से ही अपने राम बार-बार कनखियों से देख रहे थे कि तैयारियाँ हो रही हैं, और हो न हो आज की रात क़यामत की रात होगी।

लेकिन सुना है नीली छतरीवाला जब देता है तब छप्पर फाड़कर देता है। ठीक दोपहरी के तीन बजकर इक्यावन मिनट पर हमारी देवी जी की जेठानी अम्बाले से आ गईं। इतनी दूर से आने में उन्हें पर्याप्त परिश्रम पड़ा था और फलस्वरूप थकान भी कुछ कम नहीं थी। इसलिए स्त्रियों की भाषा में जिसे हम और आप लाख मगज मारने पर भी

आसानी से सीख नहीं सकते, भाभी साहबा और देवी जी में न जानें क्या-क्या मिरकोट हुई कि उस दिन की नौचन्दी स्थगित हो गई। इसकी सूचना अपने राम को तो तैयारियों के बन्द हो जाने से ही मिल गई थी, लेकिन देवी जी ने भी कहा—

"बस जी, आज नहीं, कल चलेंगे। न हो तो आप आज मुन्नी को दिखा लाइये।"

यह 'न हो' की भी एक ही रही। मैंने कहा—"देखो, तुम इस बात को खूब अच्छी तरह से जानती हो कि नौचन्दी में चाट-पकौड़ी खाने के लिए जाना मैं सख्त हिमाकत . "

अक्लमन्दी की बात अगर दुनिया पूरी होने दे तो सोने का न हो जाये। मुन्नी, जो अपनी सिफारिश को बहुत देर से मनोयोग के साथ सुन रही थी, बीच में ही चहक पड़ी—"अरे, पिताजी! 'समाज-बोध' भी वहाँ मिल जायेगा।"

"हाँ, हाँ, लो यह काम भी हो जायेगा।" श्रीमती जी ने कहा।

लीजिये साहब! यह 'समाज-बोध' जो मुन्नी जी के दरजे की एक ऐसी बेहूदी किताब है कि साल में छः महीने 'आउट आफ प्रिंट' रहती है, नौचन्दी में मिल जायेगी। मैंने कहा—"श्रीमती जी, कोर्स की किताब छापनेवालों को कहीं दूकान लगाकर बैठने की जरूरत नहीं होती। जो कुछ भागदौड़ या खर्च-बर्च करने होते हैं वे सब पहले ही कर लेते हैं और जब किताब सरकार से मंजूर हो जाती है तब हरी-हरी छानते हैं। जब मौज आती है, छापते हैं, जब तरङ्ग आती है लोप हो जाते हैं। ये भी कोई अखबार वाले हैं कि रोज कुआँ खोदें पानी पिएँ।...मुन्नी की किताब नौचन्दी में हरगिज नहीं मिल सकती।"

मगर जिसकी पीठ पर देवी हो, उसके विरोधी की सहायता करते स्वयं भगवान भी घबराते हैं। श्रीमती जी ने बेटी का पक्ष लेते हुए कहा—"ले जाइये ना, आप यहाँ पर करेंगे ही क्या? बच्ची है, थोड़ी

देर मन बहल जायेगा। कल को जाने की जिद नहीं करेगी, साथ में तीनों मुन्नियों को भी सम्हाल लेगी।"

असली बात अब समझ में आई। देवरानी-जिठानी की योजना यह थी कि आज मुन्नी जी का पाप काटा जाये और कल स्वच्छन्द होकर मनोरंजन किया जाये। मन विद्रोह कर उठा। मैं बोला—"देखो जी, इस छोटे से काम के लिए मुझे नाहक क्यों हलकान करती हो?"

"आप मेले का भी तो मजा लेंगे।" देवी जी ने मेरे स्वार्थ की ओर संकेत किया।

मैंने उनकी ओर शान्ति के साथ निहारा और दो-तीन बार पलकें झपकाई। स्पष्ट था कि मैं अपने मन की बेचैनी को दबाने का यत्न कर रहा था।

उधर मुन्नीजी ने धमकी दी—"पिताजी नहीं चले तो मैं रूठ जाऊँगी।"

मुन्नी जी का रूठ जाना भी एक धमकी है, और क्यों है इसका भी एक इतिहास है। एक बार अपनी अवज्ञा के कारण वह रूठकर घर से बाहर पड़ोस में जा बैठी थीं और हम सारे शहर में उन्हें ढूँढ़ते फिरे थे। तब से हमें उनके रूठने की परवाह रखनी पड़ती है।"

हमें मुन्नी जी की बात फौरन माननी पड़ी। लेकिन हम अपनी तरकीब लड़ाने से बाज नहीं आये। एक सिनेमा बहुत दिनों से चल रहा था और कई बार हमने सोचा था कि कभी-न-कभी उसके अवश्य दर्शन किये जाएँ। हमने योजना बनाई और मुन्नी को अलग ले जाकर उससे कहा—"बेटी, अगर आज हम तुम्हें सिनेमा दिखा लायें, तो कैसा रहे?"

मुन्नीजी ने एक क्षण हमारी सूरत को गौर के साथ देखा। हम, जो उसे सदा झाँसा देकर सिनेमा भाग जाया करते थे, विश्वास के काबिल हैं या नहीं, यही शायद वह देख रही थी। न जाने क्या सोचकर उसने कहा—"अच्छा, पिताजी!"

उस समय से लेकर शाम के साढ़े छः बजे तक मुन्नी सिनेमा जाने

की तैयारी करती रही। जब घड़ी में ठीक साढ़े छः बज गये तब वह बोली—"चलो, पिताजी!"

हम चले। साइकिल बाहर निकाली। पर दूरी इतनी कम थी कि देवीजी टोक ही बैठीं—"साइकिल ले जा रहे हो, कोई उठा लेगा। मैं तो कहती हूँ पैदल ही चले जाओ।"

"मुफ्त का माल थोड़े ही है कि कोई उठा लेगा।" हमने अकड़ दिखाते हुए कहा—"हम तो मानो आटे के ही बने हुए हैं। सच कहा है कि औरत और बुजदिली एक ही चीज के दो नाम हैं।"

गरज कि हमें जब मौका मिलता है श्रीमतीजी की जाति विशेष पर टीका-टिप्पणी किये बिना नहीं छोड़ते, क्योंकि हम अच्छी तरह समझते हैं कि आज की इस बीसवीं सदी में पाँचों इन्द्रियों से सुसज्जित मानव-जाति के इस अर्द्धाङ्ग को यदि पुरुषों का गुलाम बनाकर रखना है तो उसकी जाति की कुछ सामयिक कमजोरियों को नारा बनाकर रटते रहो। उसमें हीनताभास आ जायेगा और फिर पुरुषों का उल्लू सीधा होता रहेगा।

मुन्नीजी को साइकिल पर आगे बैठाया और दो पैडल मारकर हम सीधे सिनेमा-भवन जा पहुँचे। साइकिल को रखा स्टैण्ड पर और डेढ़ टिकट लेकर साढ़े दस आने वाले क्लास में घुस गये। द्वारपाल यानी गेट-कीपर ने हमसे कहा—"बाबूजी, बच्ची तो यह बारह साल से ज्यादा की मालूम होती है, मगर खैर, आप ले जाइये, अलग सीट पर न बैठाइयेगा, नहीं तो पूरा टिकट चार्ज हो जायेगा।"

हमने सख्त नाराज होकर कहा—"क्योंजी, तुम्हें शरम नहीं आती इस तरह की बात करते हुए? अगर बच्ची तुम्हें बारह साल से ज्यादा की मालूम होती है, तो क्या इसका मतलब है कि इसे हम गोदी में बैठाएँ? जरा किसी की तन्दुरुस्ती अच्छी हुई कि लोगों की आँखें फटने लगती हैं।"

हम द्वारपाल की बात पर भुनभुनाते हुए भीतर जा पहुँचे। वास्तव में भुनभुनाने की बात भी थी। हमने कभी ख्याल ही नहीं किया था कि

लड़की बड़ी होती जा रही है और जिन हजरत के नाम इसका बैनामा कालान्तर में किया जायगा। उनकी जीभ बड़ी लम्बी होगी। हमें इस कल्पना से ही चिढ़ है और देने के नाम पर हम केवल अँगूठा हिलाकर दिखाना चाहते हैं।

भला हो भारतीय चल-चित्र-निर्माताओं का कि वे अधिकतर चित्र ऐसे बनाते हैं कि बार-बार सिनेमा जाने का लोभ नहीं होता। अतः हमारा मनोरञ्जन हुआ हो या न हुआ हो, मुन्नीजी इस अलभ्य अवसर का लाभ खूब उठाती रहीं और हम उन्हें ही देख-देखकर खुश होते रहे। फिल्म समाप्त हो जाने पर हम दोनों बाहर निकले कि अचानक एक तरफ से किसी साहब की ओर से बड़ी गरमजोशी से पुकार हुई—
"मैंने कहा, भाई साहब, जरा ठहरिएगा।"

ठहर गए। वह सज्जन लपकते हुए आए और बोले—"भला, भाई साहब, आप आज कवि-सम्मेलन में नहीं गये?"

जाहिर था कि हम नहीं गये थे। उन्हें भी यही तथ्य बता दिया। वह बोले—"अजी, साहब आज बड़ा मजा रहा। 'विलास'जी को वह उखाड़ा कि खिसिया कर ही तो बैठ गये। आप तो जानते ही हैं कि मेरठ इस आर्ट में विख्यात है। अजी, यहाँ तो 'निराला' और 'पन्त' की भी मजाल नहीं है कि कविता पूरी कर जाएँ। कवि सम्मेलन में यही तो एक देखने की चीज थी।" वह साथ-साथ चलने लगे।

मैंने चलते-चलते पूछा—"फिर, जमे कौन साहब?"

"वह जो हैं न, क्या नाम है उनका भला-सा...हाँ, शिकारपुर के 'छप्परजी'। वह जमे कि क्या कोई उनके मुकाबले जमेगा। साहब, क्या लिखते हैं और क्या कहते हैं। हँसते-हँसते होठ चौड़े हो जाते हैं।"

मैंने पूछा—"और 'तिवारिनजी' की कविता कैसी रही? उन्हें आप लोगों ने उखाड़ा या जमाया?"

वह हँस पड़े—"अजी, वह तो न उखाड़े उखड़ें न जमाए जमें।

बस, जम जाती हैं तो उखड़ने का नाम नहीं लेतीं और जब तक आठ-नौ कविताएँ आपको कण्ठस्थ न करा दें मंच नहीं छोड़तीं। आज तो जब उन्होंने कविताएँ कहनी शुरू कीं तो हँसते-हँसते मेरा दम फूला जा रहा था। मैंने कहा—"ठीक है, तुम लोगों की भी नस पकड़नेवाला तो कोई-न-कोई होना चाहिए।"

इस प्रकार की बातचीतों में सिनेमा-भवन एक मील दूर रह गया था और हम थे कि मुन्नीजी का हाथ पकड़े बेफिकर बढ़े चले जा रहे थे। यह भी ध्यान नहीं रहा कि हमें वापस घर लौटना था। वह सज्जन जा रहे थे नौचन्दी की तरफ और मुन्नी शायद इसीलिए चुप थी कि प्रगति नौचन्दी की तरफ हो रही थी।...तभी सहसा हमें ध्यान आया कि पैरों के चलने की योजना आज नहीं बनी थी और साइकिल हम सिनेमा-भवन के स्टैण्ड पर ही छोड़ आये हैं। यह ख्याल आते ही पैरों को एकदम ब्रेक लग गया। नजर मुन्नीजी की तरह गई। साइकिल का मामला था और वापस दूनी गति से लौटना आवश्यक था। हमने उन भाई साहब से कहा—"जनाब, आपको एक तकलीफ देना चाहता हूँ।"

मेरे इस प्रकार बीच राह में रुक जाने से वह पहले ही विस्मित थे। बोले—"वाह, भाई साहब! तकलीफ कैसी? आज्ञा दीजिए, मैं हाजिर हूँ।"

मैंने कहा—"आप शायद नौचन्दी जा रहे हैं। हमारी मुन्नी को थोड़ी दूर आप लेकर चलिए। सिनेमा हाउस में मेरी साइकिल रह गई है। मैं दौड़ा-दौड़ा जाता हूँ और अभी लेकर आता हूँ। बस, आप नौचन्दी के दरवाजे तक पहुँच पायेंगे कि मैं तगड़े पैडिल मारकर आपको पकड़ लूँगा।"

"आपने भी क्या काम बताया!" वह बोले।

मैं उन्हें धन्यवाद दिए बिना ही उलटे पैरों लौटा और दुलकी चाल से बारह मिनट में ही सिनेमा-भवन जा पहुँचा। स्टैण्ड पर जाकर

साइकिल लेने में कोई खास दिक्कत नहीं हुई और उस पर सवार होकर हम वापस नौचन्दी की तरफ दौड़े। हालाँकि हिमाकत अपनी थी, लेकिन क्रोध आ रहा था श्रीमतीजी पर। हम पहले से ही जानते थे कि नौचन्दी क्या आई है हमारे शान्त और एकरस जीवन में तूफान और बवण्डर पैदा हुआ है।

जब साइकिल लेकर नौचन्दी के दरवाजे पर पहुँचे, तब न मुन्नीजी का पता था और न उन साहब का। संयोग से उनका नाम अपनी स्मरण-शक्ति के क्षीण होने के कारण हम भूल गए थे। अब किसी से पूछा जाए, तो क्या पूछा जाए? निदान साइकिल फिर नौचन्दी के स्टैण्ड पर रखी और मेले की 'सैर' आरम्भ की। ध्यान हर उस लड़की की तरफ था, जो आठ साल पार कर चुकी हो। दूकानों पर लगी बिजली की बत्तियों का हम केवल यह लाभ उठा रहे थे कि कहीं उनके प्रकाश में हमें अपनी प्यारी मुन्नी दिखाई पड़ जाए।

उस रात नौचन्दी देखी और खूब देखी! रात के दो बज गए और नौचन्दी से वापस होने की हिम्मत नहीं हुई। अब हमें अपनी हिमाकत पूरी तरह ज्ञात हो गई थी। हमें यह भी नहीं मालूम था कि जिनको हमने मुन्नी सौंपी थी उन भाई साहब का क्या नाम है। यह भी नहीं मालूम था कि उनका घर कहाँ पर है। तभी तो हमारी श्रीमतीजी का यह कहना कि तुम्हें बाजार से सब्जी तक लानी नहीं आती, उस समय आलोचना-शास्त्र का श्रेष्ठ वाक्य जँच रहा था।

दो बजे घर आए, इस बार साइकिल सहित। दरवाजे पर खड़े होकर दस-बीस आवाजें लगाईं। मन में डाह हुई कि जब हम सिर से पाँव तक परेशान हैं, ये हमारे घरवाले बड़े आराम से टाँगें फैलाए स्वप्नों की दुनिया में विचर रहे हैं।

द्वार श्रीमतीजी ने ही खोले और बिना बोले-चाले वह वापस चली

गईं। साइकिल उठाकर हम भीतर घुसे और इस प्रत्याशा में चुप रहे कि श्रीमतीजी पूछेंगी—"मुन्नी कहाँ है?"

पर उन्होंने कुछ और ही कहा—"क्यों जी, आखिर अपने ही मन की की न! मुन्नी को उन महाशय के हाथ भेज दिया और दो बजे तक आप नौचन्दी में गुलछर्रे उड़ाते फिरे। बड़े संन्यासी बनते थे कि मुझे तो नौचन्दी से घबराहट होती है। अब आपकी सजा यह है कि कल हम सबको रात के दो बजे तक नौचन्दी दिखानी पड़ेगी।"

हम मुँह बाए श्रीमतीजी के मुखारबिन्द को ताक रहे थे और भविष्य अभी हमारे सामने था।

विश्वासघाती

आधी रात के समय कोहरा बहुत गहरा था। हाथ को हाथ सुझायी नहीं देता था। ऐसे ही समय शहर के आरम्भ में स्थित एक भवन के द्वार पर खट-खट हुई।

द्वार पर थोड़ी-थोड़ी देर के अन्तर से बराबर दस्तक लगती रही, जब तक वह खुल नहीं गया। खोलनेवाली एक युवती थी। कोहरे के कारण उसकी आकृति धूम्र की प्रतिमा सी लगती थी।

आगंतुक बड़े असभ्य ढंग से भीतर घुसा। हल्के से धक्के से युवती को एक ओर हटाकर उसने स्वयं द्वार बंद करके कुण्डी चढ़ा दी। यह अभद्र व्यवहार करते हुए वह फुसफुसाया—"चुप रहना, मेरे हाथ में रिवाल्वर है। तुम्हारी एक आवाज पर मैं तुम्हारी बोलती सदा के लिये बंद कर दूँगा।"

युवती आतंक से स्तंभित हो गयी। द्वार बंद हो जाने से भीतर फिर गहरा अंधकार छा गया। युवती की बांह का किसी ठंडी सी धातु से स्पर्श हुआ। संभवतः यह रिवाल्वर था।

उसके बोलने से पहले ही आगंतुक ने कड़े स्वर में आज्ञा दी—"भीतर चलो" युवती हिली नहीं। कंपित स्वर में उसने पूछा—"कौन हो तुम ?" उसके प्रश्न का उत्तर न देकर आगंतुक और भी कड़े शब्दों में बोला—"भीतर चलो !"

यंत्रचालित की तरह युवती अन्दर जाने लगी। उसकी पीठ से अस्त्र सटाये आगंतुक भी पीछे-पीछे आता प्रतीत हुआ।

एक कमरे से बिजली का प्रकाश खिड़कियों के शीशों से छनकर बाहर दालान पर पड़ रहा था। यहाँ आकर युवती घूमकर खड़ी हो गयी।

उसने तीव्र दृष्टि से आगंतुक की ओर देखा, जो एक अधबने संदूक के पास खड़ा था। इधर-उधर लकड़ी का छीलन बिखरा हुआ था।

वह साधारण कद का युवक था। उसके शरीर पर जेल के वस्त्र थे। उनकी काटछांट और लाल पट्टियाँ यही बता रही थीं। चेहरे पर मूँछ-दाढ़ी बहुत बढ़ी हुई थी। जांघिये के नीचे पैर नंगे थे। एक घुटना चोट से फूट गया लगता था। एक पैर में लोहे का एक कड़ा पड़ा हुआ था। कुछ देर रुककर उसने अपने को पूरी तरह देख लेने दिया। इस बीच उसकी दृढ़ दृष्टि युवती के मुख पर गड़ी रही। शायद वह युवती के भावों का आना-जाना निरख रहा था। रिवाल्वर के घोड़े पर उसकी अंगुलियों का दबाव कड़ा था और उसकी नली युवती की ओर स्थिर थी।

"तुम क्या चाहते हो?" युवती ने पूछने का साहस किया।

अब युवक ने अपनी आवश्यकताओं की ओर ध्यान दिया। अभी तक वह केवल सुरक्षा और शरण चाहता था। सेंट्रल जेल से भागकर आना हँसी-खेल नहीं था। योजना बनाने में तीन दिन से उसने एक मिनट भी पलकें नहीं झपकायी थीं। इस बीच में आशंका ने उसके हृदय को मथ दिया था। वह सबसे पहले सोना चाहता था, किन्तु परिस्थिति वैसी नहीं थी। पहली बार उसने अनुभव किया कि भागे हुए कैदी के भाग्य में सोना नहीं बदा होता।

बिना सोचे ही उसने उत्तर दिया। "मुझे कमरे में ले चलो।"

युवती चुपचाप आगे चली। थोड़ी देर में वह एक कमरे में पहुँच गये। द्वार के पीछे बटन दबाकर युवती ने बत्ती जला दी। वह जंगली जानवर धम्म से पास पड़े एक सोफे पर गिर पड़ा। युवती ने देखा, वह उसे बच निकलने का कोई अवसर नहीं दे रहा था। युवक की दृष्टि पूर्ववत उसपर स्थिर थी।

"बराबर के कमरे में मेरे पिता सो रहे हैं," युवती ने भय-मिश्रित स्वर में कहा। "वह हृदय-रोग से पीड़ित हैं। यह रात उनके ऊपर

कठिन बीत रही है। तुम जो चाहते हो, मैं तुम्हें दे दूँगी—रुपया पैसा, जेवर जो कुछ तुम्हारी इच्छा हो ...”

युवक निश्चल बैठा रहा। एक क्षण के लिये भी उसकी दृष्टि और अस्त्र का कोण नहीं बदला "पकड़ो, पकड़ो, बचने न पाये।" की आवाजें अभी तक उसके मस्तिष्क में गूँज रही थीं। जेल का दस वर्ष का पीड़ित और अपमानित जीवन उसके नेत्रों के सम्मुख साकार नाच रहा था।

वह नहीं बोला। बराबर के कमरे से कराहने की आवाज आयी।

"अनीता!" किसी ने पुकारा। शायद युवती का रोगी पिता जाग उठा था।

"तुम ठहरो, मैं आती हूँ," युवक से कहकर अनीता कमरे से बाहर जाने के लिये वापस मुड़ी। सहसा एक तेज चोट की ध्वनि हुई, लड़की ने चौंककर पीछे देखा। किवाड़ के किनारे पर कुण्डी से उभरी एक कील ने युवक के कुरते की बाँह पकड़ ली थी। युवक ने घबराकर किवाड़ पर अपने रिवाल्वर से बड़े जोर से आघात किया था। कदाचित उसे ऐसा अनुभव हुआ था, जैसे किसी ने उसे बाँह पकड़कर थाम लिया हो।

कैदी को उस पर विश्वास नहीं हुआ था। इसलिये वह उसके पीछे-पीछे ही, उसे अपने रिवाल्वर का निशाना बनाये, उठकर चल दिया था।

अनीता को पहली बार उस डरे हुए व्यक्ति पर दया आयी। पीछे पीछे कैदी को लिये हुए वह अपने पिता के कमरे में गयी। उसे देखकर बिस्तरे पर पड़ा प्रौढ़ रोगी व्यक्ति धीमे से बोला—

"यह रात नहीं बीतेगी, अनीता। मंगलू को कह दे डाक्टर को बुला लाये।"

"मंगलू कई रात का जागा हुआ था, पिता जी। मैंने आज उसें सोने के लिये कह दिया था। मैं फोन करके डाक्टर को बुलाती हूँ।"

अनीता ने सहमी हुई दृष्टि से अपने पीछे की ओर देखा। द्वार के

एक ओर से उसकी ओर मुँह किये रिवाल्वर की नली चमक रही थी। वह धीरे-धीरे पलंग के सिरहाने रखे टेलीफोन की ओर बढ़ी।

युवक तुरन्त कमरे में आ गया। "सावधान!" वह चिल्लाया। "फोन की ओर मत बढ़ना।"

रोगी उसे देखकर चौंक उठा। युवती उसकी ओर करुण दृष्टि से देखने लगी। बिना डाक्टर को बुलाये कैसे काम चल सकता है? उसके पिता का अन्तिम समय निकट जान पड़ता है। यह मनहूस आदमी इस अंधेरी रात के अंधकार से निकलकर अचानक उसके पीछे क्यों पड़ गया है?

खाँसते हुए रोगी ने पूछा—"तुम कौन हो? क्या चाहिये?" उसकी झुकी हुई आँखों की पुतलियाँ ऊँची होकर उस विचित्र आगंतुक पर जम गयीं।

युवक ने उत्तर नहीं दिया। एक-एक करके कमरे की सभी वस्तुओं पर उसकी पैनी दृष्टि फिर गयी। रोगी के पलंग के पास रखी मेज पर दवाइयों की शीशियाँ थीं। एक ओर एक अंगीठी सुलग रही थी, उससे सिकाई होती होगी। द्वार के पास ही एक काठ की नयी आलमारी थी। उसके पास ही एक सोफा था। रोगी के सिर के पीछे से बिजली के हल्के लट्टू का प्रकाश कमरे में दीये की रोशनी की तरह फैला था।

युवती चिल्ला उठी। "तुम जवाब क्यों नहीं देते? तुम हमें लूटना चाहते हो, तो लूट लो! डाक्टर को तो बुलाना ही होगा। वह नहीं आयेगा तो पिताजी मर जायेंगे।"

"चुप रहो!" युवक जंगलियों की तरह चिल्लाया। उसका मस्तिष्क तर्क के सहारे सोचने की अवस्था में नहीं था। उसकी साँस तेज चल रही थी। जीवन के पिछले बंधनपूर्ण दस वर्षों में उसने मनुष्य-मनुष्य के बीच सहृदयता और मित्रता का व्यवहार नहीं देखा था। मनुष्य स्वार्थी है, उसके संसर्ग में आनेवाला प्रत्येक व्यक्ति उसका शत्रु है। सरलता, ईमानदारी, सभ्यता सब एक दूसरे से अपना काम निकालने के अस्त्र हैं।

उसने रिवाल्वर को और भी कसकर पकड़ लिया। दो कदम बढ़कर वह चुपचाप सोफे पर बैठ गया।

रोगी ने एक बार बड़े गौर से उसकी ओर देखा और फिर चुपचाप अपनी पलकें झपकायीं। "अनीता," उसने पुकारा, "देखो, बढ़ई के सामान में एक रेती पड़ी होगी। उठाकर इन्हें दे दो।"

बढ़ई का सामान बाहर था। अनीता के पीछे-पीछे वह युवक भी चला। बढ़ई के सामान में से रेती लेकर उसने बड़ी मेहनत से अपने पैर में पड़े कड़े को खोल डाला।

युवती के पीछे वह फिर रोगी के कमरे में आ गया। युवती के पिता ने उसे दाढ़ी बनाने का सामान युवक को दे देने की आज्ञा दी। रिवाल्वर पकड़े-पकड़े युवक एक ही हाथ से अपनी दाढ़ी बनाने लगा। अनीता पिता के सिरहाने खड़ी होकर उसे देखती रही।

युवक को जेल के कैदी नाई के कुन्द उस्तरे की याद आयी। उसके सेफ्टीरेजर ने काँपकर एक जगह थोड़ा-सा छील दिया। फिर उसे जेल का भंगी याद आया। जिन हंडों में बाहर मैला ले जाया जाता था, उनमें रखकर कैदियों के लिये बीड़ियाँ आती थीं। उसने भी अच्छे पैसे देकर भंगी से इसी प्रकार एक डबल रोटी मँगायी थी। पहले से ही सब प्रबन्ध सोचा हुआ था। बाहर वह अपने सहायकों से पत्र-व्यवहार कर चुका था। मूर्ख मेहतर! मैले के खाली हंडे में रखी हुई डबलरोटी! कैदियों का जीवन भी अध पतन की चरम सीमा पर पहुँच जाता है, उसने सोचा और वह रोटी! वह जरूरत से ज्यादा डबल थी। उसने उसके अन्दर से रिवाल्वर निकालकर उसे पाखाने में फेंक दिया था।

उसकी दाढ़ी बन गयी। उठकर कार्निस पर लगे शीशे में उसने अपनी सूरत देखी। अब वह आदमी जँचता था, उसका भार-ग्रस्त मन कुछ हलका हुआ। अब उसके मस्तिष्क ने सोचना शुरू किया—वस्त्र भी बदलने चाहिये।

पिता के इङ्गित पर लड़की आलमारी में से एक सूट निकाल लायी थी। सूट उसके हाथ से लेते समय अब उसने लड़की की ओर ध्यान दिया। व० सुन्दर थी। उसके मुख से आतङ्क का भाव हट गया था।

अनीता खड़ी नहीं रही। उसने अँगीठी पर चाय के लिये पानी रख दिया। युवक सूट पहनकर भला आदमी लगने लगा था। रोगी अविचल भाव से उसकी ओर घूर रहा था। उसके हाथ में अब भी रिवाल्वर था, किन्तु उसका मुँह किसी की ओर नहीं था। हाथ भी नीचे गिरकर स्वाभाविक दशा में आ गया था।

चुपचाप वह सोफे पर बैठ गया। रोगी ने पूछा—"जेल से भागकर आये हो ?" उसकी आवाज बहुत धीमी थी।

"हाँ !" युवक ने उत्तर दिया। उसको आश्चर्य हो रहा था यह सोच कर कि मरणासन्न दशा में होते हुए भी रोगी की निरीक्षण शक्ति अभी तक कितनी पैनी थी।

"क्या नाम है तुम्हारा ?"

"हेमचन्द्र...डाक्टर हेमचन्द्र !" युवक ने उत्तर दिया। अभी भी वह आवश्यकता से अधिक उत्तर देने में असमर्थ था। दस साल के जेल जीवन में वह यह भूल-सा गया था कि वह डाक्टर भी था। लेकिन उसने अपने डाक्टरी दिमाग का खूब परिचय दिया था। उसने जेल अधिकारियों को ऐसा छकाया था कि वह भी उम्र भर याद रखेंगे। एक सप्ताह पहले उसने भूख-हड़ताल की थी। जेल मैनुएल में भूख-हड़ताल से बड़ा अपराध नहीं है। उसे जेल के एक कोने में बनी तनहाई में डाल दिया गया था। इस एकान्त-स्थान में उसने मेहतर से कई डबल रोटियाँ बाहर से मँगायी थीं। मेहतर ने यह काम बड़ी प्रसन्नता से किया था। बाहर दम्भी सवर्ण उसे अछूत समझते थे। भीतर उन्हीं में से एक को हथकड़ी में रखी रोटी खिलाने में उसे अपार सन्तोष का अनुभव हुआ था। डाक्टर ने इस प्रकार अपने मतलब के लिये सामान एकत्र कर लिया था। सरसों का तेल रेत और सूत के डोरे की सहायता से

कई रात की मेहनत से बिना किसी प्रकार की आवाज किये लोहे की दो मोटी छड़ें कट गयी थीं।

"तो तुम डाक्टर हो?" एक लम्बी निःश्वास फेंकते हुए रोगी ने कहा।

युवक चुप रहा। रोगी ने फिर पूछा—"किस जेल से भाग कर आये हो?"

"सेन्ट्रल जेल से" जब तक रिवाल्वर डाक्टर के हाथ में था उसे कोई डर नहीं था। सब कुछ बताये बिना आगे राह नहीं दीखती थी। "पिछले दस साल का यातनापूर्ण जीवन मैंने जेल में बिताया है। बड़ी कठिनाई से मैं भागने में सफल हुआ हूँ। फिर यदि किसी ने मुझे जेल में ठूँसने की कोशिश की, तो मैं या तो उसे मार डालूँगा या खुद मर जाऊँगा।"

रोगी की छाती का दर्द तीव्र हो चला था। वह हृदय को एक हाथ से दबाकर कुछ देर शान्त रहा। फिर उसने पूछा—

"किस मामले में तुम्हें सजा हुई थी?"

युवक ने सोफे की पीठ का सहारा ले लिया था। बिना हील-हुज्जत उसने उत्तर देना आरम्भ किया—"आज से दस-ग्यारह वर्ष पहले जाड़े की एक सन्ध्या को इसी प्रकार एक व्यक्ति मेरे दवाखाने में घुस आया। वह भी जेल से भागकर आया था। वह बुरी तरह जख्मी था। उसके कन्धे में एक गोली घुसी हुई थी। रिवाल्वर दिखाकर उसने मुझे आपरेशन करने का आदेश दिया। यद्यपि वह वेदना के कारण बेहोश हो गया था, फिर भी उसका रिवाल्वर मैंने नहीं छीना। मैं उसका आत्म-विश्वास छीनना नहीं चाहता था। मैंने उसका आपरेशन किया, मरहमपट्टी की, और इसी तरह उसे कपड़े पहनने को दिये। लेकिन सुबह होते-होते हम दोनों पकड़े गये। भागे हुए कैदी की सहायता करने के अपराध में मुझे बारह साल का कठोर दण्ड मिला। वह हत्या का अभियुक्त था।

"इन दस वर्षों में मेरे दिमाग में एक बात चक्कर काटती रही; मैं भी भाग सकता हूँ। स्थिति असह्य हो गई थी। मैं अपने को रोक नहीं सका, मैं भाग आया।"

रोगी कुछ क्षण सोचता रहा। युवती ने चाय का प्याला डाक्टर के हाथों में थमा दिया। इस वेषभूषा में युवक उसे अच्छा लग रहा था।

रोगी ने कहा—"डाक्टर, क्या तुम चाहते हो कि हम भी उसी प्रकार एक भागे हुए कैदी की सहायता के अपराध में पकड़े जायँ?"

चाय की एक चुस्की लेते हुए डाक्टर ने कहा—"मैं आपसे एक बात छिपा गया था। न जाने क्यों, उस अभियुक्त को यह सन्देह हो गया था कि मैंने ही उसे पकड़वाने के लिये पुलिस को बुलाया था। उसने अपने सब कर्मों में मुझे भी फाँस लिया था। नहीं तो मुझे इतनी लम्बी सजा नहीं हो सकती थी। मैं आपके लिये वैसा नहीं कर सकता। एक डाक्टर सदा विश्वास का मूल्य देना जानता है।"

आश्रय मिलने से डाक्टर की आँखें नींद से झपकी जा रही थीं। चाय ने उसे कुछ प्रकृतिस्थ कर दिया था। सहसा रोगी दर्द से तड़प उठा—"हा, राम! मुझे उठा ले!"

प्याला सोफे पर रखकर डाक्टर जल्दी से उठकर रोगी के पास पहुँचा। उसने रोगी की नाड़ी देखी। कुछ देर के लिये वह भूल गया कि 'शिकारी कुत्ते' उसके पीछे लगे होंगे। मेज पर रखी तरह-तरह की दवाइयों पर उसने एक सरसरी-सी दृष्टि डाली। मन में कुछ निश्चय करके उसने मेज पर रखी कुछ पेटेण्ट दवाओं से एक मिश्रण तैयार किया और युवती से रोगी को सँभालने के लिये कहा।

रोगी के मुँह में दवा उड़ेलते हुए डाक्टर उसके ऊपर झुका। युवती आशङ्का से अपने पिता को सँभाले हुए थी। उसकी उत्तेजनात्मक गरम श्वास डाक्टर की कनपटी को छू रही थी।

नारी की गरम श्वास का स्पर्श! जेल जीवन के दस वर्षों का अभाव

जैसे डाक्टर के शरीर के रोम-रोम में तड़प उठा। अभिभूत होकर वह सीधा खड़ा हो गया। पिता के दुःख से व्याकुल युवती की ओर उसके मन में स्नेह की लहरें दौड़ने लगीं। इस असामयिक स्नेह के प्रादुर्भाव से एक बार किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर डाक्टर युवती के मुख की आभा को निरखता खड़ा रह गया।

नारी ने नर की दृष्टि के स्पर्श का अनुभव किया और वह संकुचित हो गयी। रोगी ने औषधि के प्रभाव से चेतना प्राप्तकर अस्पष्ट-सी ध्वनि की और तीन प्राणियों के श्वास-प्रति-श्वास के अतिरिक्त वातावरण नीरव हो उठा।

डाक्टर ने चुप्पी तोड़ी—"इन्हें थोड़ी देर में आराम होने लग जायगा। मैंने मिश्रण तैयार कर दिया है। यह औषधि अचूक है। भगवान चाहेगा तो सुबह तक यह उठ बैठेंगे।"

निद्रा से आक्रान्त डाक्टर अनियन्त्रित पगों से चलकर सोफे पर गिर पड़ा। अभी भी उसका रिवाल्वर उसके हाथों में मचल रहा था यद्यपि वह नहीं जानता था कि आपसी सहायता से उत्पन्न इस विश्वासोत्पादक स्थिति में उसका कोई उपयोग शेष रह गया था या नहीं। सिर्फ एक आशङ्का थी—कहीं पीछा करने वाले सूँघते हुए यहाँ तक न पहुँच जायें। ऐसी दशा में वह या तो मारेगा या मर जायगा, किन्तु वह दोबारा उस अपमान के अग्नि-कुण्ड में जाकर नहीं पड़ेगा। किसी भी मूल्य पर नहीं। उसके रिवाल्वर में अभी तीन गोलियाँ शेष थीं। वह तीन आदमियों की जान ले सकता था।

रोगी का दर्द जिस प्रकार आया था उसी प्रकार चला गया। उसने कहा—"तुमने बुरा किया, डाक्टर। तुम्हें जेल से भागना नहीं चाहिये था। जहाँ तुमने दस वर्ष काटे वहाँ और भी एक दो वर्ष काट सकते थे। इतनी थोड़ी अवधि के पीछे तुमने कानून को अपना शत्रु बना लिया है—ऐसा शत्रु जिसकी विस्तृत और अपरिमित शक्ति हाथ धोकर जन्मभर तुम्हारे पीछे पड़ी रहेगी।"

"मैं ऐसी बातें सुनना नहीं चाहता।" डाक्टर ने पागलों की भाँति नेत्र विस्फारित करके कहा। उसकी स्मृति में जेल के डण्डों को फाँदने का रोमाञ्चकारी दृश्य फिर गया।

रोगी एक क्षण उसकी दशा देखकर चुप हो गया। फिर शक्ति संचय करके वह बोला—"मैं वकील हूँ। प्रत्येक बात को तर्क से सोचने की मेरी आदत है। तुम नहीं जानते कि मैंने अपनी स्थिति कितनी दयनीय बना ली है। तुम्हारी तमाम उम्र भागते-भागते बीतेगी। इस भयानक दौड़ में तुम्हें कभी भी दम लेने का अवसर नहीं मिलेगा। तुम्हें एक डेढ़ वर्ष का साधारण कमीशन मिल सकता था। केवल कुछ मशीनों के लिये तुमने अपना शेष जीवन दुःखमय बना लिया है।"

"नहीं! नहीं!" युवक चिल्लाया—"मैं उस जीवन से घृणा करता हूँ। मैं एक क्षण भी उसमें रहना नहीं चाहता।" उसने फिर अपना रिवाल्वर सम्भाल लिया।

युवती को डाक्टर की स्थिति देखकर दुःख हुआ। अपने पिता को चुप रहने के लिये कहती हुई वह बोली—"आपको अपने मेहमान से ऐसी बातें नहीं कहनी चाहिये।"

रोगी एकटक युवक को देखता रहा। फिर उसने आँखें बन्द कर लीं। वह युवक को किसी प्रकार नहीं समझा सकता कि उसका भविष्य अन्धकारपूर्ण है, कितना गहरा अन्धकार उसमें भरा है। वह बेचारा युवक उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता है।

रात्रि का चौथा प्रहर समाप्त हो चला था। मानसिक और शारीरिक रूप से थका-हारा युवक डाक्टर गहरी नींद में सो गया था। इस बीच में युवती उसकी बनायी दवा अपने रोगी पिता को पिलाती जा रही थी। उसने भूमि पर गिरा रिवाल्वर उठाकर आलमारी में रख दिया था। सोया हुआ अभागा डाक्टर कितना सरल और शान्त लगता था। सारी रात के जागरण से युवती की उन्मीलित आँखें युवक पर टिकी हुई थीं

और पलङ्ग की पट्टी पर सिर रखे उसी मुद्रा में उसने एक झपकी ले ली थी।

सुबह हो गया। रोगी अपने में शक्ति का अनुभव कर रहा था। डाक्टर के बनाये मिश्रण ने उस पर जादू-सा असर किया था। उसने पलङ्ग से उठकर युवक की सोयी हुई मुद्रा को देखा, वह अटूट निद्रा में मग्न था।

पलङ्ग से टिकी बेंत हाथ में लेकर वकील धीरे-धीरे दरवाजे तक आया। उसने घूमकर भगोड़े कैदी और अपनी लड़की को एक बार निरखा और कमरे से बाहर हो गया।

एक अनपेक्षित आहट सुनकर सहसा डाक्टर चौंक उठा। उसने आँखें मलकर पलङ्ग की ओर देखा। वह खाली था। केवल बाँह पर सिर रखे उसकी पट्टी के सहारे अभी थोड़ी देर पहले दीखे उसके सुन्दर स्वप्न की नायिका सो रही थी।

उसने गर्दन घुमायी और तुरन्त उछलकर खड़ा हो गया। द्वार पर उसकी ओर रिवाल्वर ताने पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट खड़ा था। उसकी बगल में चार-पाँच सिपाही थे और उन सबके सामने बैठा हुआ वही वकील निश्चल और निर्विकार भाव से उसे देख रहा था।

डाक्टर आश्चर्य और भय से अभिभूत हो गया। उसने जल्दी-जल्दी अपनी जेबें टटोलीं, फर्श की ओर देखा, उसके पास उसका अस्त्र नहीं था।

पुलिस सुपरिन्टेण्डेण्ट ने कहा—"हाथ ऊपर कर लीजिये, डाक्टर साहब!"

डाक्टर पागल बन गया। वह तेजी से सुपरिन्टेण्डेन्ट की ओर झपटा। बीच में ही दो सिपाहियों ने थामकर उसके हाथों में हथकड़ी पहना दी।

वकील की ओर मुड़कर सुपरिन्टेण्डेन्ट ने कहा—"धन्यवाद! वकील साहब, आपने हमें बहुत भारी चिन्ता से छुटकारा दे दिया। हम अपना

वचन याद रखेंगे। जहाँ तक होगा कैदी को कम से कम सजा दी जायगी।"

"विश्वासघाती" डाक्टर चिल्लाया—"नीच, कृतघ्न आदमी। चिता से उठकर भी तूने अपना वार कर ही दिया। तूने सारी मनुष्य जाति की अच्छाइयों के ऊपर से आज मनुष्य का विश्वास खो दिया है।"

युवती हक्की-बक्की खड़ी थी। वह शोर सुनकर जाग गयी थी। यह दृश्य देखकर वह विस्मय से जड़ हो गयी। क्या उसका पिता इतना नीच हो सकता है?

सुपरिंटेण्डेन्ट ने आज्ञा दी—"चलो!"

बिना कुछ बोले वकील चुपचाप खड़ा रहा।

डाक्टर जाते-जाते फिर चिल्लाया—"मूर्ख, काश कि मैं तुझे मिश्रण तैयार करके न देता और तू इसी रात को मर जाता। तू मुझे नहीं जानता। मैं डाक्टर हेमचन्द्र हूँ, जिसने हृदय रोग में विशेषज्ञ होने की विश्व-ख्याति प्राप्त की थी। जिन पेटेण्ट दवाइयों के योग से वह मिश्रण बना, जिसने तुम्हें चारपाई से उठाकर खड़ा कर दिया उससे क्या तुम यह आशा करते थे कि जन्म भर के लिये तुमने इस रोग से छुटकारा पा लिया? दवा की एक मात्रा तो केवल तुझे चतन करने के लिये थी। अभी तो दवा का विधिवत् कोर्स देना बाकी था। तूने अपने पैरों पर स्वयं कुल्हाड़ी मारी है। अब दुनिया का कोई डाक्टर तुझे बचा नहीं सकता। इस प्राणान्तक रोग का पहला दौरा ही तेरे प्राण लेकर छोड़ेगा...हा, हा, हा!"

डाक्टर का मस्तिष्क निःसन्देह विकृत हो गया था। युवती उसकी बात सुनकर फूट-फूटकर रो पड़ी। वकील आँखें फाड़े और अपनी छाती पर हाथ रखे लड़खड़ाता हुआ पलङ्ग की ओर बढ़ा।

अपने अभियुक्त को लेकर पुलिस सुपरिन्टेण्डेन्ट चला गया। बहुत देर तक उस कमरे के अशुभ वातावरण में युवती के रोने की आवाज गूँजती रही।

लगभग तीन साल पश्चात् सेन्ट्रल जेल का फाटक एक कैदी को निकालने के लिये खुला। दूर खड़ी एक युवती अपने स्थान से हिली और राह पर खड़े हुए उस स्वतन्त्र व्यक्ति के सामने आकर खड़ी हो गयी। अपने मुँह को दोनों हाथों से छिपाकर वह रो पड़ी।

वह व्यक्ति आगे बढ़ा। युवती उसके पीछे-पीछे चली।

"वकील साहब कैसे हैं?" चलते-चलते उस व्यक्ति ने पूछा।

"पिताजी उसी दिन स्वर्गवासी हो गये थे।" सुबकते हुए युवती ने उत्तर दिया।

बिना आगे प्रश्न किये युवक अविचल भाव से कुछ दूर चला, फिर बोला—"उसी मकान में हो?"

"हाँ!" युवती ने उत्तर दिया—"पिताजी आपके लिये एक सन्देश दे गये थे।"

उसने अपने वस्त्रों में से एक लिफाफा निकाल कर डाक्टर की ओर बढ़ाया। वहीं जेल के रास्ते पर डाक्टर ने लिफाफा खोलकर पत्र निकाला और पढ़ा। लिखा था—

"प्रिय डाक्टर,

जीवन में कुछ क्षण ऐसे आते हैं जब कि सत्य और धर्म में मरणांतक संघर्ष उठ खड़ा होता है। तुम्हारे और मेरे जीवन में भी वह समय आया था। अपनी अदम्य इच्छाओं के अनुकूल उस समय जो पथ तुमने पकड़ा था, वह तुम्हारे शेष जीवन के लिये घातक था। किन्तु उस परिस्थिति में तुम मेरी बातें समझने में असमर्थ थे। आज तुम स्वतन्त्र हो, तुम्हारे सामने उज्ज्वल भविष्य और उन्नति के कर्म करने को अबाध्य संसार पड़ा है। यदि आज तुम मेरी शुभाकांक्षाओं और मेरे कर्त्तव्य की यथार्थता समझने में समर्थ हो सको, तो एक बार हृदय से इस विश्वास-घाती को क्षमा कर देना। मेरा उद्देश्य केवल यह था कि तुम्हारा जीवन पल-पल, तिल-तिल करके पुलिस की आशङ्का में घुलता हुआ न बीते

और कुछ समय के लिये और कष्ट सहनकर तुम फिर सदा के लिये निश्चिन्त और निर्द्वन्द्व हो जाओ।

"मेरे मन में इस अन्तिम समय में तुम्हारी ओर से कोई दुर्भावना नहीं है। तुमने वही किया जो तुम्हारी परिस्थिति में प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये था, किन्तु मैंने जिस क्षण तुम्हें देखा था, तभी से तुम्हें अपना पुत्र समझता था। प्रमाण स्वरूप अपनी एकमात्र पुत्री को उसकी इच्छा के अनुकूल मैं तुम्हारी जीवन-सङ्गिनी के रूप में छोड़े जा रहा हूँ।"

तुम्हारा अभागा पितातुल्य
दामोदरदास वकील

पत्र हाथ में लिये युवक डाक्टर की आँखों से दो जल-बिन्दु गालों पर लुढ़क पड़े। युवती ने आगे बढ़कर रूमाल से उन्हें पृथ्वी पर गिरने से रोक लिया।

सौ फीसदी हिन्दुस्तानी

एकदम सार्वजनिक काम था। शरणार्थियों की सहायता के लिए लेखक और कविगण कुछ कर सकते हैं या नहीं इस पर विचार करने के लिए एक सुदीर्घ बैठक बुलाई गई थी। विशेष रूप से सभी जिम्मेदार साहित्यिकों को आमंत्रित किया गया था। आथित्य सत्कार का गौरवपूर्ण कार्य एक सफल वकील साहब को प्रदान किया गया था।

निमंत्रण-पत्रिका जिन कागजों पर छपवाई गई थी उनसे सहज ही इस बात का भ्रम हो सकता था कि वकील साहब के किन्हीं सुपुत्र का शुभ विवाह तो नहीं है। खैरियत इतनी ही थी कि जिन लोगों के पास उन्हें भेजा गया था वे सब पढ़े-लिखे थे, और यदि कुछ लोगों ने उन्हें देखते ही मनमोदक फोड़ भी लिए होंगे, तो ख्याल था वे बाद में उन्हें जोड़ लेंगे। जिन दिग्गज साहित्यकारों के पास, और जिन धुरंधर सम्पादकों के पास ये पुरजे भेजे गए थे, उनसे प्रार्थना की गई थी कि वे अपने शुभागमन की सूचना पहले से ही दे दें, जिससे उनके स्वागत-सत्कार का प्रबन्ध अनुपात से किया जा सके।

एक मित्र ने सुझाव रखा कि भई महान् धुरंधरों से उत्तरों की आशा इतनी सुगमता से नहीं कर लेनी चाहिए। पता नहीं उत्तर देने के मूड में हों या नहीं—इसलिए स्वीकृति की सूचना पाने के लिए एक एक छपा हुआ कार्ड भी लिफाफों में रखा गया, जिस पर केवल हस्ताक्षर करके डाकघर में डाल देने का कष्ट मात्र उनके ऊपर छोड़ा गया।

निश्चित तिथि पर, यह सोचकर कि बड़े-बड़े लोग आनेवाले हैं, कहीं देरी होने से किरकिरी न हो जाए, हम पन्द्रह मिनिट पहले ही पहुँच कर वकील साहब की बैठक की शोभा घटाने लगे। इधर-उधर दृष्टि डाल कर देखा तो अभ्यागतों के लिए दाचल का जो प्रबन्ध किया गया था

उसके कुछ नमूने मेज पर रखे दिखाई दिए, और मेजबान तथा उनका कोई प्रतिनिधि कहीं भी दिखाई नहीं दिए। निराला ढंग देखकर जी ललचाने लगा। पता नहीं शरणार्थियों के लिए कुछ प्रबन्ध हो या न हो, पहले अपने शरणार्थी पेट की पीड़ा तो शान्त करूँ। मगर समय पर समझ आ गई।

सोफा सेट की एक कुरसी पर विराज कर मैंने सोचा कि चलो, अच्छा है, पन्द्रह मिनिट पहले आ गए। कोई माई का लाल यह तो नहीं कहेगा कि हजरत नहीं आए। ठीक दो बजने से पाँच मिनिट बाद गोष्ठी के संयोजक महोदय कुछ घबराए हुए से आए, लेकिन वहाँ केवल मुझे ही बैठा देखकर उन्हें चैन पड़ी। मेरी ओर हँस कर बोले, "आखिर भागते-भागते भी पाँच मिनिट लेट हो ही गया।"

मैं भी उनकी हँसी का उत्तर देने के लिए हँस दिया। इससे उन्हें परम सन्तोष हुआ।

सवा दो बजे निमंत्रित व्यक्तियों में से एक सज्जन आए और नमस्तों का आदान-प्रदान करके इस प्रकार इतमीनान से पैर फैलाकर बैठ गए, जैसे बहुत पहले आ गए हों।

धीरे-धीरे घड़ी की सूइयाँ आगे की ओर सरकने लगीं। हम लोग शरणार्थी समस्या पर अपने-अपने विचार व्यक्त करने लगे। इसी तरह पन्द्रह मिनिट बीत गए। उसी समय चुस्त पायजामा पहने, खुले सिर, काली अचकन के भीतर सिमटे—बिलकुल साहित्यिक प्रतिरूप की एक मूर्ति फाटक के भीतर घुसती दृष्टिगोचर हुई। वह साहब कुछ परेशान से थे और हाँफ रहे थे। शायद दौड़ लगाकर आए थे। आते ही लपाक से बोले—"माफ कीजिएगा, कुछ देर तो नहीं हुई?"

मैंने देखा कि उनकी पतली कलाई पर एक जनानी घड़ी 'मैं कुछ भी तो नहीं' के आकार-प्रकार में शोभित थी। इन महाशय को भी उचित अभिवादन के पश्चात् एक कालीन के बीचोंबीच प्रतिष्ठित किया गया और उन्हें तसल्ली दी गई कि वास्तव में वह कुछ जल्दी आ गए हैं।

मैं फिर इतमीनान से अगली पन्द्रह मिनिट गुजर जाने की प्रतीक्षा करने लगा। मालूम होता था कि इन सब लोगों में बेतार के तार से यह समझौता हो चुका था कि एक-एक करके पन्द्रह-पन्द्रह मिनिट बाद दर्शन देंगे। लेकिन इस बार पन्द्रह मिनिट से पूर्व ही एक परिचित मुख दिखाई पड़ा। यह सज्जन एक साहित्यिक थे। कमरे के बाहर खड़े होकर उन्होंने एक संदिग्ध-सी दृष्टि कमरे के भीतर डाली और मुझे संकेत से बाहर बुलाया। जब मैं उनके पास पहुँचा, तो बोले—"भई, मैं जरा अभी आया।"

इसके अर्थ थे कि वह अभी पूर्ण रूप से पधारे नहीं थे। मैंने कहा, "भले आदमी यदि देर करके ही आना था, तो जहाँ सत्यानाश वहाँ साढ़े सत्यानाश, सब कामों से निबट कर ही आए होते।"

कहने लगे—"अजी, वह तो मैं सूचना देने चला आया। अभी देर ही कहाँ हुई है! बात यह है कि श्रीमती जी सिर पर सवार हो गईं। वह बाहर ताँगे में बैठी हैं न—उन्हें 'निगार' के मैटिनी शो में छोड़कर अभी आया। अभी तो कोई आया भी नहीं है—आप लोग शुरू करें न तब तक।" और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए ही उन्होंने लम्बे डग फाटक की ओर बढ़ाए।

मैं मन मार कर मुड़ा ही था कि फाटक के भीतर एक कार के रुकने का स्वर सुनाई पड़ा। घूम कर देखा, तो शहर के एक प्रसिद्ध साहित्यिक एक नई-सी मूर्त्ति को कार के पायदान पर से हाथ का सहारा देकर इस प्रकार उतार रहे थे कि कहीं जमीन पर जोर से पैर न रखा जाए, मैंने कहा—"कहिए साहब, इतनी देर!"

बोले "अरे साहब, क्या बताऊँ, इनकी वजह से देर हो गई। आप कलक्टर साहब की सुपुत्री हैं मीनाक्षी देवी!" फिर मेरी ओर संकेत करके कलक्टर साहब की सुपुत्री से बोले—"आप हैं मिस्टर अमुकानन्द अध्यापक..." उन्होंने मेरी ओर हाथ जोड़ दिए और मैंने भी अपने हाथ जोड़कर नाक से लगाए।

ठीक ! कलक्टर साहब की सुपुत्री हैं, इसलिए देर अनिवार्य होनी चाहिए, इसलिए इन्हें भी देरी मे आना चाहिए। वह हमारे दर्शन करने आई थी या हमें दर्शन देने के लिए अपने को लाई थी इसका कुछ पता नहीं चल सका क्योंकि शरणार्थी समस्या आपके विचार से कोई समस्या नहीं थी, कोई भी एक दो बड़े सेठ इस समस्या को उनके विचार से पूरी तरह हल कर सकते थे और उन्हीं से अपील करने की आवश्यकता वह महसूस करती थी, असल में वह इसलिए आई थी कि उन्हें आना पड़ा था क्योंकि उनके साथ आए साहित्यिक महोदय उन्हें साहित्यिकों को दिखाना चाहते थे।

खैर साहब ! इन्हें भी यथास्थान बिराजा। अब तीन बजने का मौका आ गया था, फिर भी पच्चीस-तीस हजरतों में अभी तक केवल ये ही लोग पधारे थे, जिनकी चर्चा ऊपर आ चुकी है। हाँ, कुछ देर बाद एक साहब और आए और बाहर ही खड़े-खड़े हम लोगों को इस तरह घूरने लगे, जैसे हम सब किसी अजायबघर के जानवर हों, मैंने बाहर निकल कर परिचय पूछा, तो उत्तर मिला—"सेवक को कुमरेश कहते हैं।"

मैंने कहा—"ओह ! तो आप जलालाबाद से आए हैं, लेकिन भाई कुमरेश जी, गाड़ी तो बारह बजे ही आ जाती है।"

उन्होंने कहा—"जी, यहाँ हमारी एक सम्बन्ध की बहन रहती हैं। हमने सोचा कि अभी समय है, इसलिए उनके यहाँ चले गए थे।"

मैंने कहा—"तो उनके यहाँ किस मेकर की घड़ी है ?"

"क्या मतलब ?" उन्होंने चकराकर पूछा।

"मेरा मतलब यही है कि उनकी घड़ी बहुत आराम से चलती है, तभी तो आपको दो के स्थान पर तीन बज गए।"

'ओह ! वास्तव में जी, मैं सो गया था।"

यह भी बैठाए गए। मुझे स्वयं अपने ऊपर झुँझलाहट हो रही थी। किन महारथियों में आ फँसे ! वह सज्जन तो अन्त तक आए ही नहीं,

जो श्रीमती जी को मैटिनी शो में छोड़ने गए थे। मालूम होता है उनकी श्रीमती जी वहाँ पहुँच कर फिर सिर हो गईं और उन्हें जबरदस्ती उनके साथ ही बैठकर वह पिक्चर देखनी पड़ गई, जिसे यह बहुत दिनों से देखना चाहते थे। बाद में यह भी मालूम हुआ कि उनकी श्रीमती जी ने विरहाग्नि में अपने झुलस जाने का भय दिखाकर उन्हें अपने साथ ही फर्स्ट क्लास में बैठने के लिए मजबूर कर दिया था, नहीं तो वह अवश्य आते।

इधर असली विषय को छोड़कर रूस और अमरीका की पैंतरेबाजी पर चर्चा होने लगी। बात उतरते-उतरते ज्यों-त्यों करके शरणार्थियों पर आई। कलक्टर साहब की सुपुत्री वाले साहब बोले—"अरे, यह कांग्रेस गवर्नमेण्ट आखिर कर क्या रही है?" और वे अपनी साथिन की तरफ इस प्रकार देखने लगे, जैसे कांग्रेसी सरकार की जवाबतलबी सुनकर उन्होंने कुछ बुरा तो नहीं माना।

बहन जी वाले साहब बोले—"अरे साहब, अभी राजतिलक को दिन ही कितने हुए हैं? जुम्मा जुम्मा आठ दिन।"

एक उर्दू वाले सज्जन ने कहा—"इस कदर आरामतलबी और वक्त को जाया करने की तरफ झुकाव रहा, तो चाहे एक-एक साल करके सदी-की-सदी गुजर जाए, तो भी कुछ होने वाला नहीं।"

इसी तरह की चीमीगोई में जब साढ़े तीन बज गए और कोई सज्जन आते दिखाई न दिए, तो मैंने संयोजक जी से कहा—"अच्छा, तो मेरा विचार है कि कार्यवाही आरम्भ कर दी जाए।"

उन्होंने कहा—"अब पाँच चार लोगों में मीटिंग करने से क्या लाभ?"

मैंने कहा—"आरम्भ तो कीजिए, भागते भूत का लँगोटा भला।"

लेकिन और सज्जनों ने भी उन्हीं के मत का समर्थन करते हुए मीटिङ्ग स्थगित करने की राय दी। निश्चय हुआ कि बैठक अब से पन्द्रह दिन बाद रखी जाए, और जिन लोगों ने अपनी-अपनी स्वीकृति भेजकर

अन्य लोगों का समय भी खराब किया था, तब तक उनकी भी खोज-खबर ले ली जाए। दिन आगामी से आगामी रविवार का निश्चित हुआ।

अब समय निश्चित होना शेष रह गया था। मैंने कहा "दो बजे का ही रहे, इस वक्त इन्तजार अच्छी हो सकती है।"

सवा दो बजे वाले साहब बोले—"अरे साहब! यह तो नामुमकिन है। दो बजे तो गर्मियों के दिनों में इस कदर लूएँ चलता है कि बस तोबा है।"

संयोजक जी ने आठ बजे का सुझाव दिया, तो जनानी घड़ी वाले सज्जन बोले—"अजी, आठ बजे कैसे आया जा सकता है? घर-गिरस्ती के सभी काम रविवार पर छोड़े जाते हैं, यह हर आदमी सुबह-ही-सुबह ठण्ढ-ठण्ढ में निपटाना चाहता है।"

मैंने कहा—"तो चार बजे दिन को रखिए। इस वक्त लोग अकसर चाट-पकौड़ी खाते हैं, सो यहाँ पर तैयार रहेगी ही।"

कार वाले सज्जन बोले, "हाँ, यह ठीक हो सकता था, लेकिन साहब, जैसे दो बजे वैसे चार बजे।"

कलक्टर साहब की सुपुत्री ने अपनी बुद्धि का परिचय दिया, "यहाँ बल्ब तो होगा ही," और उन्होंने छत की ओर ताका।

संयोजक जी ने कहा—"रोशनी का प्रबन्ध तो हो जाएगा, लेकिन रात का समय, गरमियों के दिन, कुछ रहेगी नहीं।"

सुबह आठ बजे घर-गिरस्ती के काम निपटेंगे, दिन के दो बजे लूएँ चलेंगी, चार बजना तो दो बजने के बराबर ही होगा, गरमियों का रात कुछ रहेगी नहीं! मैंने कहा, "अनिश्चित समय तक स्थगित रखा जाए, तो कैसा?"

अन्त में चार बजे का टाइम ही रखा गया। मैंने कहा, "यह भी तो बताइए, सज्जनों, कि इस टाइम को पाँच बजे का समझा जाए या छः बजे का? मेरे ख्याल में तो दो बजे का ही रखा जाए, जिससे चार का समय ठीक बैठे।"

कार वालों ने कहा, "तब तो, प्रियवर, वही मसला रहेगा, जैसे मैं अपनी घड़ी पन्द्रह मिनिट तेज रखता हूँ, लेकिन यह जानते हुए कि मेरी घड़ी पन्द्रह मिनिट तेज है, लगे हाथों दस-बीस मिनिट की देर अधिक हो जाती है।"

मैंने कहा, "अन्दरूनी टाइम किसी को पता न चले।"

उन्होंने कहा, "अजी, पता तो लग ही जाता है।"

यानी सब लोग इसी पर खार खाए बैठे रहते हैं कि और चाहे जो कुछ हो जाए, लेकिन ठीक समय का पता लगा ही लेंगे और उस समय पर नहीं आएँगे।

मैंने कहा, "अच्छा, तो टाइम को हिन्दुस्तानी समझा जाए या अँगरेजी इसका निपटारा कृपा करके समय रहते कर लीजिए।"

इस पर सबसे देर में आने वाले सज्जन बोले, "भाई साहब, अब तो हिन्दुस्तानी चीज को भी अँगरेजी से बेश बनाना है, इसलिए टाइम सौ फीसदी हिन्दुस्तानी ही समझा जाएगा।" और जब स्वयं उनकी ओर संकेत किया गया, तो वह झेंप कर मुसकराने लगे।

अन्त में यह बात बतलाने योग्य है कि अगली बैठक में इस बैठक से दो आदमी अधिक आए, और वह ठीक सौ फीसदी हिन्दुस्तानी टाइम पाँच बजे से आरम्भ हुई।